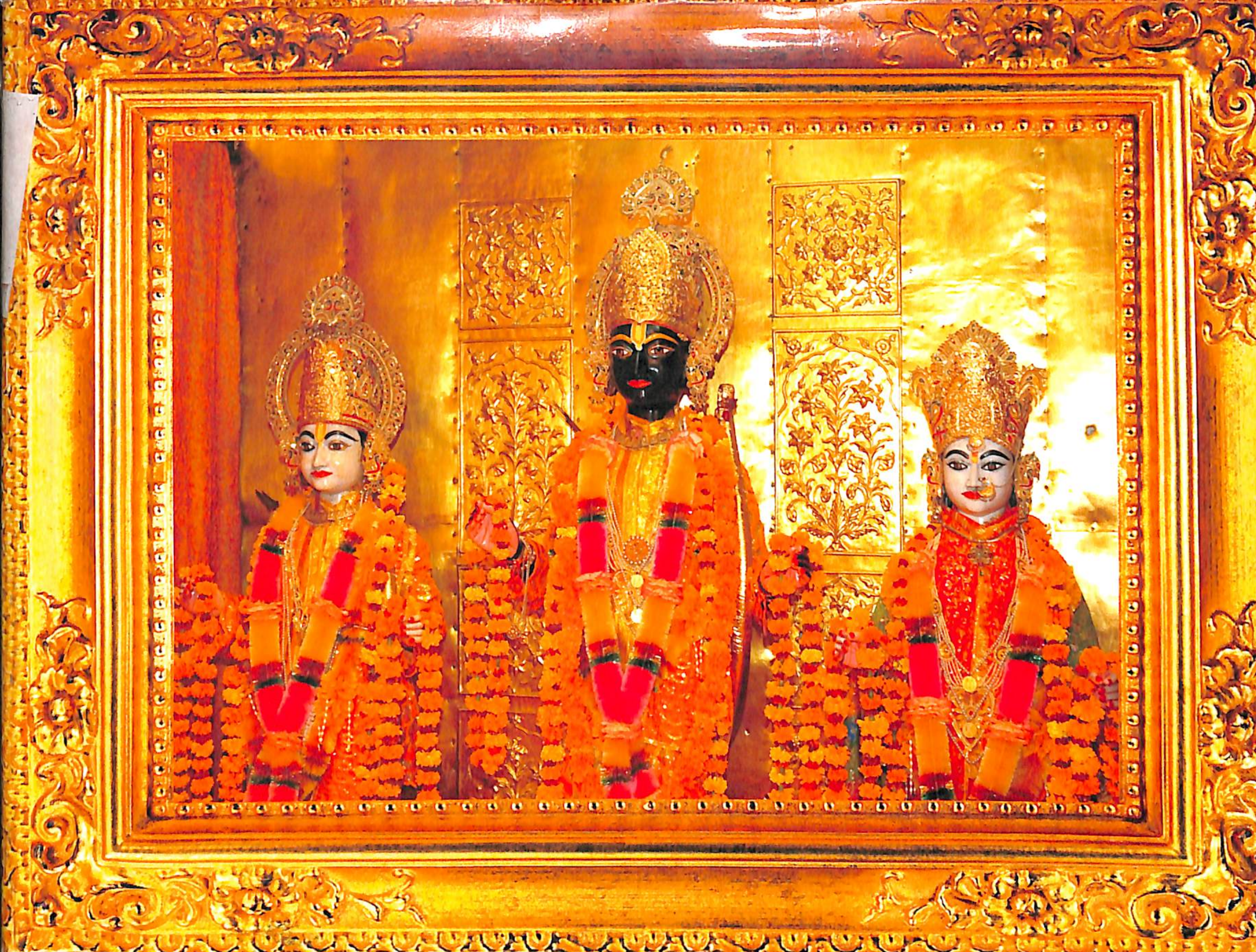


श्री रघुनाथ मन्दिर

जम्मू

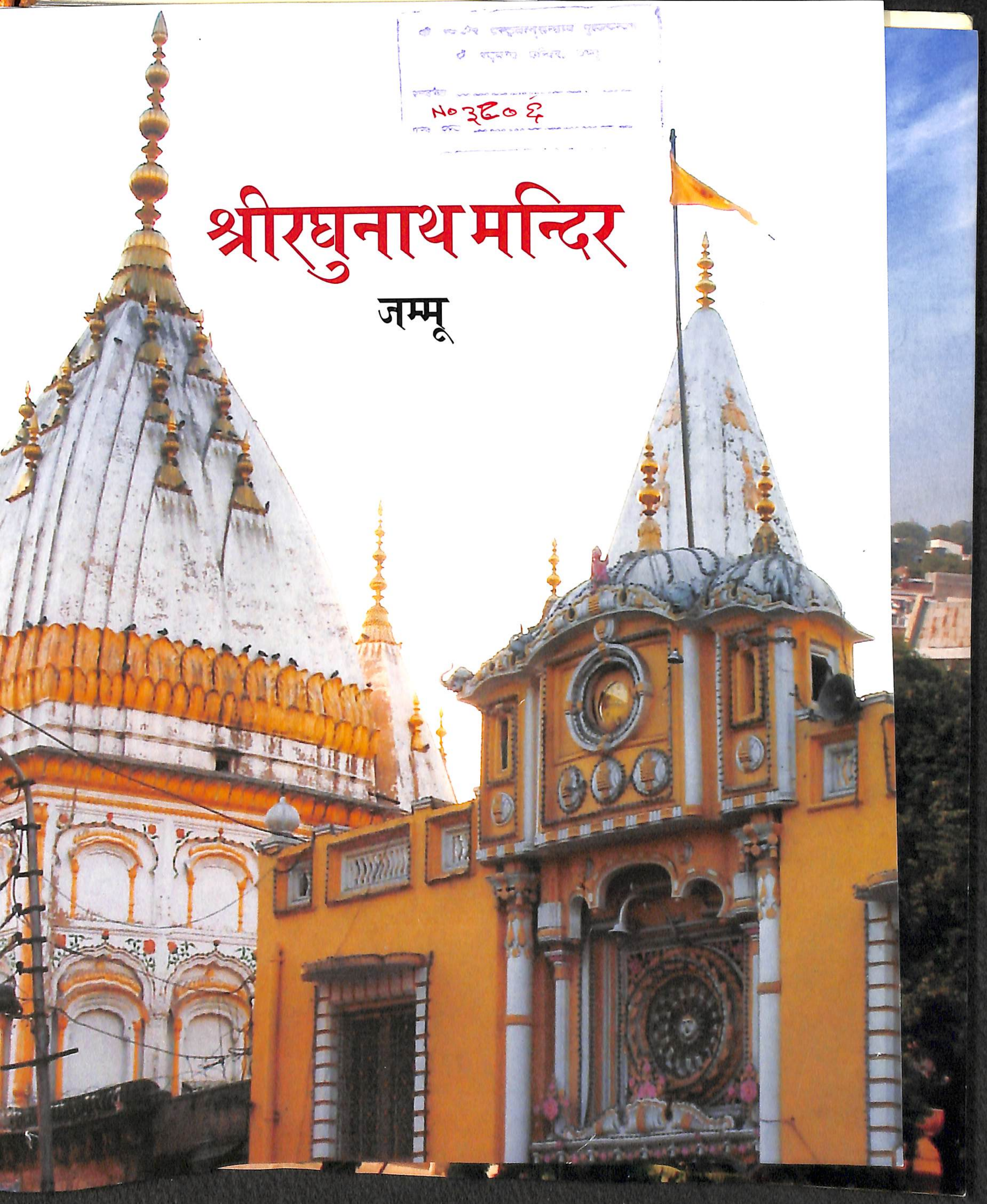
प्राक्कथन

डॉ. कर्ण सिंह

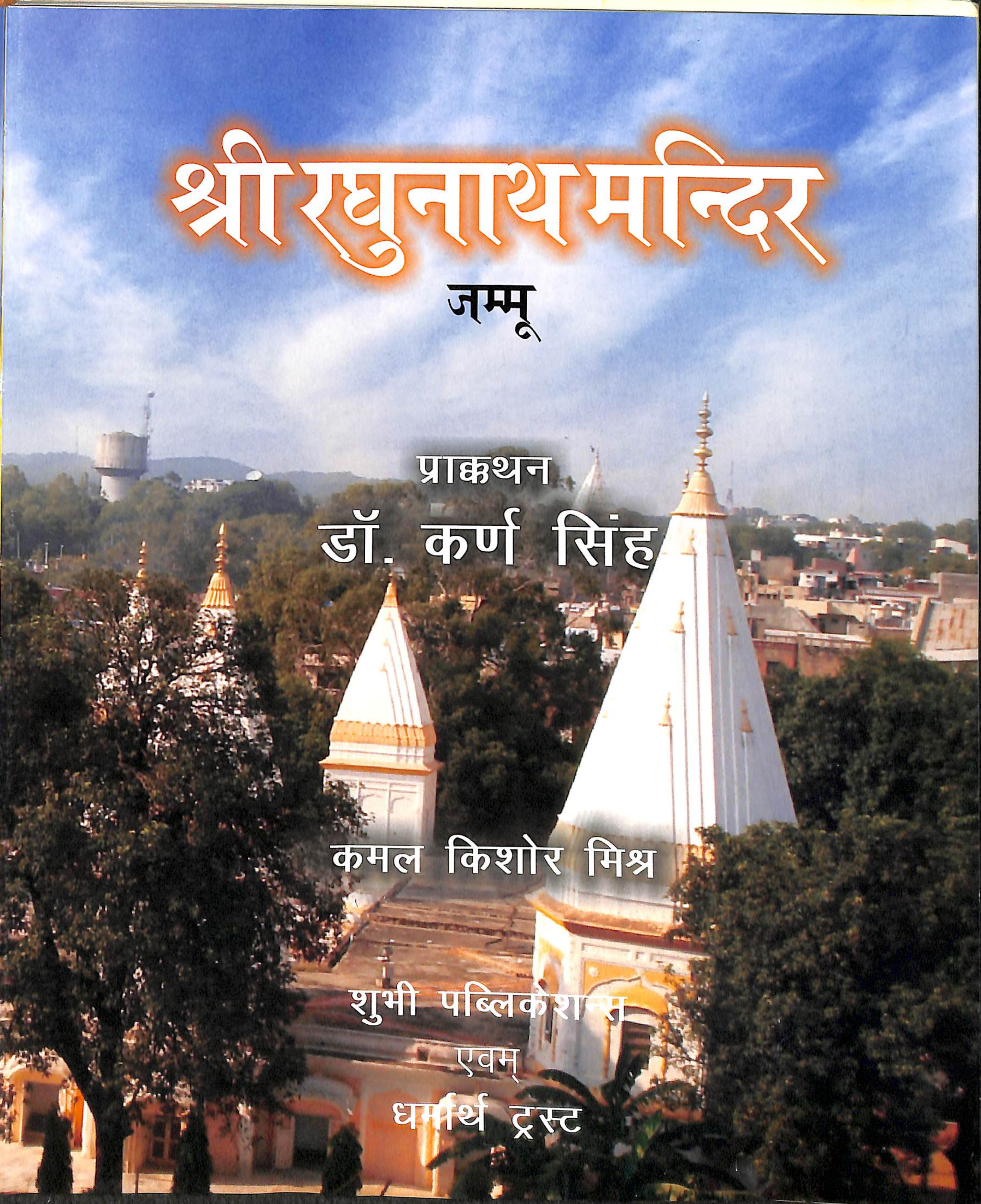
कमल किशोर मिश्र

श्रीरघुनाथ मन्दिर

जम्मू







श्री रघुनाथ मन्दिर

जम्मू

प्राक्कथन

डॉ. कर्ण सिंह

कमल किशोर मिश्र

शुभी पब्लिकेशन्स
एवम्
धर्मार्थ ट्रस्ट

प्रथम संस्करण – 2010

यह पुस्तक धर्मार्थ ट्रस्ट के सहयोग से
शुभी पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित

Published by: **Shubhi Publications**
Head Office: 211, Daryacha, 39, Hauz Khas Village, New Delhi - 110016
Branch Office: 240, 2nd floor, City Centre, Gurgaon - 122 002, Haryana, India
Printed at Aegean Offset Printers, Greater Noida

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगम्
सीता समारोपित वाम भागम् ।
पाणौ महासायक चारू चापम्
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।



प्राक्कथन

भारतीय चेतना में सर्वव्यापी ईश्वर की अनुभूति सगुण और निर्गुण दोनों ही आयामों में है। निराकार सच्चिदानंद ही असंख्य देवी-देवताओं की संकल्पनाओं के माध्यम से हमारे अनुभव में प्रकट होते हैं। ये ईश्वरीय विग्रह हर किसी को परमेश्वर की निकटता सहज ही सुलभ करा देते हैं। हमारे यहाँ प्रचलित पूजा का अनुष्ठान भौतिक स्तर से आरंभ होकर आध्यात्मिक स्तर तक की यात्रा को संभव बनाता है।

इसी पृष्ठभूमि में हमारे पुरखों ने अनेक ऐतिहासिक मंदिरों की स्थापना की। जब हमारे पूर्वज महाराजा गुलाब सिंह जी ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना की, जो उन दिनों भारत में सबसे विशाल रियासत थी, तो उन्होंने उसी समय धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू एवं कश्मीर, की नींव भी रखी ताकि उनके राज्य में जो प्राचीन मंदिर थे उनकी रक्षा तथा सुप्रशासन होता रहे और नए मंदिरों का भी निर्माण हो। इस कार्य को उनके सुपुत्र डोगरा राज्य परिवार के द्वितीय रत्न महाराजा रणवीर सिंह जी, जो एक महान्, विद्वान्, प्रशासक तथा अद्वितीय मंदिर निर्माता हुए, ने कार्यान्वित किया। उन्होंने रियासत में विशेषकर जम्मू प्रांत में अनेक अद्‌भुत मंदिरों का निर्माण करवाया, जिन्हें देखकर आज भी आश्चर्य होता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली जम्मू नगर के दो मंदिर हैं, पहला श्री रणवीरेश्वर मंदिर, जो उनके इष्टदेव भगवान शंकर को समर्पित है, और दूसरा हमारे कुलदेवता पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का अद्‌भुत एवं अद्वितीय श्री रघुनाथ मंदिर परिसर, जो समस्त भारतवर्ष में अपनी पहचान रखता है। तब से यह मंदिर अनवरत उपासना का केन्द्र बना हुआ है और श्रद्धालुओं में जीवन रस का संचार कर रहा है। समय-समय पर मंदिर के प्रांगण में अनेक देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा होती रही और यह मंदिर देवसंकुल का रूप लेकर विशालतर होता गया। आज इसमें अनेक देवी-देवताओं के 250 से भी अधिक विग्रह हैं और सपाद लक्ष शालिग्राम परिक्रमा में जड़े हुए हैं।

श्री रघुनाथ मंदिर के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व को देखते हुए इसका एक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवरण सबको उपलब्ध कराने की इच्छा, मेरे मन में काफ़ी दिनों से पनप रही थी। ईश्वर की अनुकम्पा से एक योग्य युवा लेखक डॉ. कमल किशोर मिश्र ने इसे पूरा किया। उन्होंने बड़ी रुचि से मंदिर का इतिहास, उसके विकास और उसके वर्तमान स्वरूप को रेखांकित किया है। साथ ही उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियों तथा सैकडों चित्रों को भी प्रस्तुत किया है। मंदिर के मुख्य आराध्य दशरथनंदन पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथ जी का विशेष उल्लेख किया है। इस कार्य में उन्होंने अनेक प्राचीन ग्रंथ, फारसी दस्तावेज, संस्कृत पाण्डुलिपियाँ तथा मंदिर परिसर में स्थित प्राचीन शिलालेख से सामग्री संकलित की है। इस प्रंशसनीय कार्य के लिए वे बधाई के पात्र हैं ।

मुझे विश्वास है कि यह ग्रंथ भक्तों तथा यात्रियों के लिए तो उपयोगी सिद्ध होगा ही अपितु सामान्य पाठक भी इससे लाभान्वित होंगे। अब तो अनेक देशों मे भारतीय मूल के हिन्दी भाषा-भाषी परिवार भी रहते हैं जिन्हें इस पुस्तक में बडी रूचि होगी। शीघ्र ही इस ग्रंथ का अंग्रेजी संस्करण भी उपलब्ध हो जाएगा, जिससे देश-विदेश में इस अद्‌भुत मंदिर का प्रचार-प्रसार होगा। भगवान् श्रीरघुनाथ जी को कोटिशः प्रणाम करते हुए उनके चरणों में ही यह ग्रन्थ समर्पित है–

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगम् सीतासमारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायक चारुचापम् नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

(डॉ. कर्ण सिंह)

कर्ण सिंह

श्री राम नवमी

24 मार्च, 2010


श्री शुभ सम्बत २०६५ .... सूर्य उदय ६/४
मासे कार्तिक प्र० ८ कार्तिक कृष्ण
सन ईस्वी १९९ २००८
महीना अक्तूबर २३ तिथि दशमी
नक्षत्र आश्लेषा
वार बृहस्पति
प्रातः मन्दिर खुलने का समय ५
मंगल आरती प्रातः ६/१५
मन्दिर बन्द दोपहर १२
शाम मन्दिर खुलने का समय ४
आरती रात ८/–
मन्दिर रात बन्द करने का समय १०
गण्ड मूलादि विचार
सूर्य अस्त ५/४५
भद्रा २२/०० से ५०/६० तक

प्रास्ताविक

भारतीय जीवन में देवत्व की साधना प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण रही है। आराधना के लिए देवी-देवताओं के नाना रूप देश के कोने-कोने में प्राप्त होते हैं। एक देवता या अनेक देवताओं को लेकर देवालयों का निर्माण होता रहा है। आस्था और श्रद्धा के स्रोत ये देवालय संस्कृति के केन्द्र के रूप में कार्य करते हैं। भारतीय मानस देव-विग्रहों को आशा, विश्वास और शक्ति के पुंज के रूप में देखता है। भगवान् श्रीराम, कृष्ण, विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, काली, गणेश, हनुमान, बलराम इत्यादि की जीवंत स्मृति हमेशा बनी रहे, इसके लिए आज भी लोग अपने बच्चों का नामकरण इन्हीं के अनुरूप करते हैं। न केवल विशेष पर्वों पर, अपितु दैनिक जीवन में भी इन देवी-देवताओं को अपने सामान्य अनुभव में उतारा जाता है।

जम्मू का श्री रघुनाथ मंदिर एक महत्वपूर्ण देवस्थान के रूप में जन-मानस में स्वीकृत है और नित्य बड़ी संख्या में लोग दर्शन तथा आराधना के लिए यहाँ उपस्थित होते रहते हैं।

वर्ष 2007 में श्री रणवीर संस्कृत अनुसंधान केन्द्र, जम्मू में मुझे कार्य करने का अवसर मिला। इस अवधि में संस्थान और धर्मार्थ ट्रस्ट से सम्बद्ध सभी लोगों का भरपूर स्नेह मिला। अपने अनुसंधान के क्रम में संस्थान में संग्रहित प्राचीन पाण्डुलिपियों से साक्षात्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्हीं दिनों मुझे यह जानकारी मिली कि श्रीरघुनाथ मंदिर के निर्माण की संकल्पना में प्राचीन रामपूर्वतापनीय उपनिषद् भी आधार रहा है, जबकि निर्माण प्रक्रिया का साक्षी है तत्कालीन फ़ारसी दस्तावेज़।

उसी बीच गुरुवर डॉ. कर्ण सिंह, जो भारतीय मनीषा के शिखर पुरुष के रूप में ख्यात हैं, की श्रीनगर यात्रा में उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला। श्रीनगर में श्री शंकराचार्य के पहाड़ी-मंदिर और प्रसिद्ध डल झील के समीप कर्ण महल के सुरम्य प्रांगण में गुरुवर से वार्तालाप होती थी। इसी वार्तालाप से श्रीरघुनाथ मंदिर पर ग्रंथ के विचार का सूत्रपात हुआ। फिर क्या था ? गुरु की प्रेरणा, विषय की पहचान और फिर जम्मू पहुँचते ही जुट गया सामग्री संकलन में। धीरे-धीरे इस प्रयास को गति मिली, रघुनाथ जी का आशीर्वाद मिला और अब यह ग्रंथ आपके करकमलों में है।

मेरे चिंतन में यह विषय निरंतर बना रहा। अनुसंधान की दृष्टि से श्रीरणवीर संस्कृत शोध संस्थान के निदेशक डॉ. धनीराम शास्त्री, जम्मू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यापकों सहित स्थानीय प्रबुद्धजनों, जम्मू पैलेस में स्थित अमर महल म्यूजियम–पुस्तकालय के श्री आर.एस. पठानिया, प्रो. शर्मा सहित अन्य लोगों ने भी अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए। पुस्तकालय अधिकारी के रूप में मित्रवर पंडित चंद्र प्रकाश, सी.आर.पी.एफ. के सुशील मिश्र बराबर सहयोग करते रहे।

इस अवधि में मैंने इस समस्त देव-संकुल को समझने और आत्मसात करने का प्रयास किया। यह देव-संकुल पिछली शताब्दियों से निरंतर सक्रिय और जीवंत रूप में जन-मानस को आह्लादित करता आ रहा है। गुरुवर डॉ. कर्ण सिंह जी के सुझाव और मार्गदर्शन से भगवान नटराज शिव के ब्रह्माण्डीय नर्तन पर एक विस्तृत ग्रंथ तैयार कर चुका था और अब सौभाग्य मिला श्रीरघुनाथ मंदिर पर।

मेरे मन में यह विचार आया कि समस्त देव-संकुल का ऐतिहासिक दृष्टि से विवरण प्रस्तुत किया जाय। इस हेतु एक अध्ययन योजना तैयार की और विभिन्न प्रकार की सामग्री एकत्र की। जब मैंने इस योजना के स्वरूप पर श्रद्धेय महाराजा डॉ. कर्ण सिंह जी से चर्चा की तो उन्होंने न केवल प्रोत्साहित किया, बल्कि मार्गदर्शन भी दिया और धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा इस कार्य को संयोजित करने की व्यवस्था भी की।

उपलब्ध दस्तावेजों, प्राचीन पाण्डुलिपियों तथा वर्तमान देव-संकुल से जुड़े लोगों और स्वयं अपने अध्ययन-निरीक्षण के आधार पर प्रस्तुत लघु ग्रंथ को पूरा किया। इस क्रम में धर्मार्थ ट्रस्ट, जम्मू एवं कश्मीर के प्रधान ठाकुर दिवाकर सिंह, सचिव श्रीमती विजय गंडोत्रा तथा पं. दर्शन शर्मा, प्रशासक, पण्डित समूह, श्री रघुनाथ मंदिर का मैं विशेष आभारी हूँ। फ़ारसी दस्तावेज़ के हिन्दी रूपांतरण के लिए प्रो. रेहाना खातून, दिल्ली विश्वविद्यालय, इतिहासपरक चर्चा के लिए डॉ. सैयद तनवीर नसरीन, वर्द्धमान विश्वविद्यालय, मंदिर-संकुल में उपलब्ध सी.आर.पी.एफ. के तत्कालीन असिस्टेंट कमांडेंट श्री एस.एन. सिंह तथा अशोक कुमार, फोटोग्राफ़र गोपाल, दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रिय अध्यापकगण तथा टाइपिंग के लिए शिवप्रताप यादव, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली; ग्रंथ की आकर्षक साज-सज्जा के लिए कमल पूर्णा जमुवाल तथा सहृदय रामभक्त पाठकों तक सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए श्री संजय आर्य, शुभी पब्लिकेशन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। वे सभी लोग, जिन्होंने मुझे नाना प्रकार से सहयोग और मार्गदर्शन दिया, मैं उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

यद्यपि वाल्यावस्था से ही भगवान् शिव को समर्पित अपने पितामह, माता-पिता की छवि हमारे मन में बसी है। मेरे पितामह ने शिवालय का निर्माण करवाया था। उन्होंने अपनी चल-अचल सारी संपत्ति भगवान् शिव को अर्पित कर दी थी। प्रख्यात चिंतक और भारतीय दर्शन एवं संस्कृति के मनीषी डॉ. कर्ण सिंह जी से अहेतुक स्नेह मिला। इस पुस्तक के लिए आशीर्वाद रूप में जो आधार दिया है, उसके लिए मैं उनका बहुत उपकृत हूँ, जिसे शब्द दे पाना संभव नहीं। मेरे उत्साह को निरंतर गति और आकार देकर उन्होंने सतत मार्गदर्शन दिया और मातृस्वरूपा महारानी यशोराज्यलक्ष्मी जी का आशीर्वाद मेरा सम्बल बना।

भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ और हिन्दी तथा संस्कृत के प्रकांड विद्वान् आचार्य विद्यानिवास मिश्र जी का स्नेह और आशीर्वाद भी मुझे मिला। उनके साथ यात्राएँ कीं, साथ रहा और सीखने का अवसर पाया। आधुनिक दृष्टि और भारतीय मूल्यों के प्रति उनकी निष्ठा ने मुझे सदैव आकर्षित किया। मैं इस अवसर पर उनकी पावन स्मृति को प्रणाम करता हूँ।

गुरुवर प्रोफेसर गिरीश्वर मिश्र जी मेरी प्रगति में सतत रुचि लेते रहे है। तथा मार्गदर्शन देते रहे हैं। मैं इनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

अपनी सांस्कृतिक यात्रा में उन सभी का हार्दिक अभिनंदन करता हूँ जिनका सहयोग निरंतर मिला, जिनमें सुप्रसिद्ध कथक नृत्यांगना शोभना नारायण, गुरुवर डॉ. एस.एस. राणा, अनुज आनन्द पाठक तथा उमा वासुदेव।

अंत में संस्कृत विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय के मेरे सहयोगी अध्यापकगण तथा फिजी स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र के सभी सहयोगियों के प्रति आभार और धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

कमल किशोर मिश्र

भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र
भारतीय दूतावास,
सुआ, फिजी आइलैण्ड

विषय सूची

जयश्रीराम

1

श्रीरघुनाथ जन्म - रहस्य

श्रीरघुनाथ जन्म-रहस्य

श्रीराम को सभी लोग मर्यादापुरुषोत्तम मानते हैं; किंतु कुछ लोग उन्हें 'महामानव' के रूप में देखते हैं। इसी सन्दर्भ में श्रीराम के जन्मकाल आदि को लेकर विचार होने लगा है। सर्वप्रथम यहाँ पर कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकों के विचारों का उल्लेख किया जा रहा है। जोन्स नामक एक अंग्रेज इतिहासज्ञ ने श्रीराम का जन्मकाल ई.पू. 2029 वर्ष स्वीकार किया है। दूसरे पाश्चात्य इतिहासज्ञ विद्वान टॉड ने ईसापूर्व 1100 वर्ष श्रीराम का जन्म-समय निर्धारित किया है। वैंथली ने उनका जन्मकाल ईसापूर्व 950 वर्ष ही अंगीकार किया है और विल्फर्ड ने ईसापूर्व 1360 वर्ष राम का जन्मकाल माना है। इस प्रकार सभी पाश्चात्य इतिहासज्ञों ने अपन-अपने अध्ययन के आधार पर श्रीराम का जन्म–समय ईसा के पूर्व मानकर अपनी मान्यता की 'इतिश्री' कर दी। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के जन्मकाल के विषय में भारतीय मतों में भी भिन्नता है। त्रेतायुग की घटना की गणना सरल नहीं है।

श्रीराम के जन्मकाल के निर्णय के लिये भारतीय ज्योतिष की गणना ही सर्वथा मान्य हो सकती है। संत शिरोमणि तुलसीदास ने ज्योतिष की आधारशिला को सन्देहास्पद स्थिति में रख दिया। उनका कहना है –

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल।।
नौमी तिथ मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।

(रामचरितमानस 1/190; 1/191/1)

इस उल्लेख से वास्तविक वर्ष का ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है। केवल चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि और अभिजित् नक्षत्र के संकेत से वर्ष का वास्तविक ज्ञान कठिन है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने जो संकेत दिया है, वह अन्धकार में 'प्रकाश-स्तम्भ' का कार्य करता है। आदिकवि ने लिखा है – 'श्रीराम के जन्मकाल के समय (महाराज दशरथ के पुत्रेष्टि-यज्ञ समाप्ति के बाद बारह मास बीतने पर) चैत्र शुक्ल नवमी के दिन, पुनर्वसु नक्षत्र के समय, कर्क-लग्न में, पाँच ग्रह जब अपने-अपने उच्च में स्थित थे, गुरु चन्द्रमा के साथ थे, उसी समय श्रीराम का अवतरण हुआ' –

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।।

वाल्मीकि रामायण (1/18/8–9)

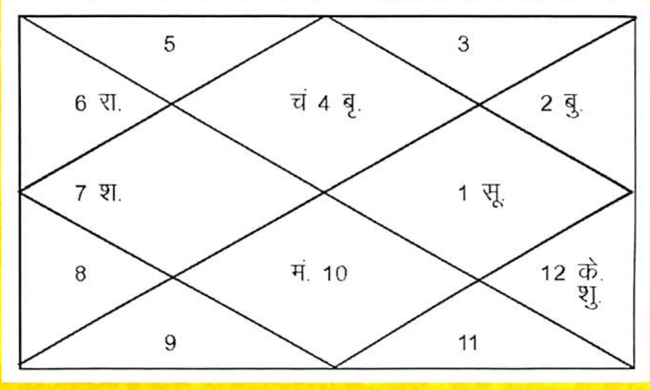
वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में पाँच ग्रहों को उच्च का और गुरु एवं चन्द्रमा को एक साथ बतलाकर ज्योतिष के ज्ञाताओ के लिये 'मार्ग' प्रशस्त किया। संत कवि तुलसीदास जी ने अन्य प्रमाणों के आधार पर अभिजित् नक्षत्र का उल्लेख किया है। अब प्रश्न होता है कि उस समय कौन-से पाँच ग्रह उच्च के थे ?इस सम्बन्ध में कई प्रमाणों के आधार पर यही अवगत होता है कि रवि, भौम, गुरु, शुक्र और शनि उच्च के थे। अर्थात् रवि मेष के थे, मंगल मकर के, गुरु कर्क राशिस्थ थे, शुक्र मीन के और शनि तुला के।

भारतीय गणितज्ञ और फलितज्ञ यह मानते हैं कि स्थूल रीति से एक राशि पर सप्तर्षिगण लगभग सवा 2 सहस्र वर्ष, वरुण 14 वर्ष और शनि लगभग ढाई वर्ष तक रहता है। इसी प्रकार सूर्य एक राशि पर एक मास और गुरु एक राशि पर प्रायः एक वर्ष रहते हैं। सूर्य,

गुरु और शनि के विचार से पाँचों उच्चस्थ ग्रहों की गणना करने में सरलता हो जाती है और इस हिसाब से श्रीरामचन्द्र जी का जन्मकाल आज से 1,85,56,106 वर्ष पूर्व हुआ था।

आगे दिये गये जन्मांग में पाँच ग्रहों की उच्चता तो वाल्मीकि के वचनों से प्रमाणित हो जाती है, किंतु बुध और राहु तथा केतु की स्थिति में मतभेद हैं बहुत-से विद्वान् बुध को एकादश भाव में, राहु को तृतीय भाव में और केतु को नवम् भाव में मानते हैं।

पाँच उच्चस्थ ग्रहों का प्रभाव



श्रीराम का जन्मांग

राजा श्रीराम और रामराज्य की तुलना अन्य किसी राजा और किसी राज्य से नहीं की जा सकती; न तो श्रीराम-जैसा राजा होगा, न रामराज्य-जैसा सुखदायी राज्य। पुराणों के उल्लेख से प्रकट होता है कि श्रीराम ने राजा बनने पर ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया। यह सब पाँच उच्चस्थ ग्रहों का प्रभाव था। यद्यपि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की विशेषता पाँच उच्चस्थ ग्रहों से नहीं थी, ग्रह तो उन्हीं के प्रभाव से प्रभावित थे, तथापि लौकिक विचारधारा से उन पाँचों उच्चस्थ ग्रहों ने भी अपना प्रभाव दिखलाया। मंगल भी उच्चस्थ थे। मंगल शुभद्र ग्रह नहीं है। अतः मंगल ने मर्यादापालक श्रीराम के जीवन में स्त्री-विषयक कष्ट दिया। पुनर्वसु के चतुर्थ चरण में राम अवतरित हुए और पुनर्वसु के चौथे चरण के कारण गुरु की दशा चार वर्ष शेष रही। गुरु के बाद ही शनिदेव की महादशा प्रारम्भ होती है, जो 19 वर्ष तक चलती है। बुध की महादशा में मर्यादापालक श्रीराम को वन में जाना पड़ा था और पुराणों के उल्लेखानुसार (मानस के अनुसार नहीं) बुध की महादशा में 41 वर्ष की अवस्था में वनयात्रा समाप्त हुई थी। इस प्रकार भगवान् श्रीराम की कुण्डली के अनुसार उनके आविर्भाव काल का संक्षेप में विचार किया गया। उपर्युक्त विचार श्री आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री ने व्यक्त किये हैं।

एक ऋचा में रामायण

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्।।

ऋक्वेद (10/3/3)

(भद्रः) भजनीय रामभद्र ने (भद्रया) भजनीय सीता के द्वारा (सचमानः) सेवित होते हुए (आगात्) वन में आयें (स्वसारम्) सीता को चुराने के लिये (जारः) रावण (पश्चात्) राम और लक्ष्मण के परोक्ष में (अभ्येति) आया।

यदि ध्यान दें तो स्पष्ट होता है कि मन्त्र के चार चरणों में रामकथा के मुख्य चार अंश आ गये हैं। पहले चरण में बताया गया है कि भगवान् राम सीता के साथ तपोवन में आये। दूसरे चरण में बताया गया है कि राम और लक्ष्मण के पीछे रावण छिपकर सीता के पास आया और उसने उनका हरण कर लिया। तीसरे चरण में यह बताया गया है कि हनुमानजी ने लंका में आग लगा दी और चौथे चरण में कहा गया है कि रावण युद्ध के लिये राम के सम्मुख आ गया।

आध्यात्म रामायण में माता पार्वती भगवान् शंकर से श्रीपुरुषोत्तम भगवान् के सनातन तत्त्व के बारे में पूछती हैं –

'पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य
सनातनं त्वं च सनातनोऽसि।।'

अध्यात्म रामायण (1/1/7)

क्योंकि वे भगवान् राम सिद्ध गणों के द्वारा परम अद्वितीय, आदिकारण, प्रकृति के गुण-प्रवाह से परे बताये जाते हैं; किंतु कुछ का कहना है कि श्रीराम परब्रह्म होने पर भी अपनी माया से आवृत्त होने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। अतः

वशिष्ठादि के उपदेश से उन्होंने अध्यात्मतत्त्व को जाना –

वदन्ति राम परमेकमाद्यं
निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः
परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः।।
वदन्ति केचित् परमोऽपि रामः
स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम्।
जानाति नात्मानमतः परेण
सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम्।।

अध्यात्म रामायण (1/1/12–13)

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः
पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां
रामाभिधानो हरिरित्युवाच।।

अध्यात्म रामायण (13, श्लोक 1)

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि 'हरि' या 'विष्णु' और 'राम' दोनों में कोई अन्तर नहीं है। राम गुणज्ञ हैं, अर्थात् रत्नाकर समुद्र के ऐश्वर्यरूप गुण के ज्ञाता हैं। वह विमान द्वारा अपने ही स्थान अर्थात् शब्दगुणात्मक आकाशरूप विष्णुपद का संचरण कर रहे हैं।

एक दिन पार्वजी जी ने महादेवजी से पूछा – 'आप हरदम क्या जपते रहते हैं?'

उत्तर में महादेवजी विष्णुसहस्रनाम कह गये।

अन्त में पार्वजी जी ने कहा – 'ये तो एक हज़ार नाम आपने कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्य के लिये असम्भव है। कोई एक नाम कहिये जो सहस्रों नामों के बराबर हो और उनके स्थान में जपा जाय।'

इस पर महादेव जी ने कहा –

"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।"

"राम राम शुभ नाम रटि, सबखन आनँद-धाम।
सहस नाम के तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम।।"

भगवान शिव श्रीराम से निवेदन करते हैं –

मुमूर्षोर्मणिकर्ण्यां तु अर्धोदकनिवासिनः।
अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्।।

अर्थात् मरने के समय मणिकर्णिका-घाट पर गंगाजी में जिस मनुष्य का शरीर गंगाजल में पड़ा रहता है उसको मैं आपका तारक-मन्त्र देता हूँ, जिससे वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

(पद्मपुराण, उ. खण्ड)

रघु – इक्ष्वाकु वंशावली

विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम्।।16।।
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वशिष्ठो भगवानृषिः।

'महाराज! आपको तो विदित ही होगा कि इक्ष्वाकु कुल के देवता ये महर्षि वशिष्ठजी हैं। हमारे यहाँ सभी कार्यों में ये भगवान् वशिष्ठ मुनि ही कर्तव्य का उपदेश करते हैं और इन्हीं की आज्ञा का पालन किया जाता है।

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः।।17।।
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वसिष्ठो में यथाक्रमम्।

'यदि सम्पूर्ण महर्षियों सहित विश्वामित्र जी की आज्ञा हो तो ये धर्मात्मा वसिष्ठ ही पहले मेरी कुल-परम्परा का क्रमशः परिचय देंगे।

तूर्ष्णीभूते दशरते वसिष्ठो भगवानृषिः।।8।।

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम्।

यों कहकर जब राजा दशरथ चुप हो गये, तब भगवान् वशिष्ठ मुनि पुरोहित सहित विदेहराज से इस प्रकार बोले।

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः।।19।।

तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः।

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः।।20।।

'ब्रह्माजी की उत्पत्ति का कारण अव्यक्त है – ये स्वयम्भू हैं नित्य, शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचि की उत्पत्ति हुई। मरीचि के पुत्र कश्यप हैं, कश्यप से विवस्वान् का और विवस्वान् से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ।।19–20।।

मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः।

तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्।।21।।

'मनु पहले प्रजापति थे, उनसे इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ। उन इक्ष्वाकु को ही आप अयोध्या के प्रथम राजा समझें।

इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान् कुक्षिरित्येवविश्रुतः।

कुक्षेरथाम्तजः श्रीमान् विकुक्षिरुदपद्यत।।22।।

'इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम कुक्षि था। वे बड़े तेजस्वी थे। कुक्षि से विकुक्षि नाम कान्तिमान् पुत्र का जन्म हुआ।

विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्।

बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान्।।23।।

'विकुक्षि के पुत्र महातेजस्वी और प्रतापी बाण हुए। बाण के पुत्र का नाम अनरण्य था। वे भी बड़े तेजस्वी और प्रतापी थे।

अनरण्यात् पृथुर्जज्ञे त्रिशंकस्तु पृथोरपि।

त्रिशंकोरभवत् पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः।।24।।

'अनरण्य से पृथु और पृथु से त्रिशंकु का जन्म हुआ। त्रिशंकु के पुत्र महायशस्वी धुन्धुमार थे।

धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः।

युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः।।25।।

'धुन्धुमार से महातेजस्वी महारथी युवनाश्व का जन्म हुआ। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुए, जो समस्त भूमण्डल के स्वामी थे।

मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसंधिरुदपद्यत।

सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित्।।26।।

'मान्धाता से सुसन्धि नामक कान्तिमान् पुत्र का जन्म हुआ। सुसन्धि के भी दो पुत्र हुए – ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित्।

यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो नाम नामतः।

भरतात् तु महातेजा असितो नाम जायत।।27।।

'ध्रुवसन्धि से भरत नामक यशस्वी पुत्र का जन्म हुआ। भरत से महातेजस्वी असित की उत्पत्ति हुई।

यस्यैते प्रतिराजान उद्पद्यन्त शत्रवः।

हैहयास्तालजंघाश्च शूराश्च शशबिन्दवः।।28।।

'राजा असित के साथ हैहय, तालजंघ और शशबिन्दु-इन तीन राजवंशों के लोग शत्रुता रखने लगे थे।

सगरस्यासमंजादथांशुमान।।

दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः।।38।।

'सगर के पुत्र असमंज और असमंज के पुत्र अंशुमान् हुएं अंशुमान् के पुत्र दिलीप और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए।

भगीरथात्ककुत्स्थाश्च रघुस्तथा।

रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः।।39।।

'भगीरथ से ककुत्स्थ और ककुत्स्थ से रघु का जन्म हुआ। रघु के तेजस्वी पुत्र प्रवृद्ध हुए, जो शाप से राक्षस हो गये थे।

कल्माषपादोऽप्यभवत् तस्माज्जातस्तुशंखणः।
सुदर्शनः शंखणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्।।40।।

'वे ही कल्माषपाद नाम से भी प्रसिद्ध हुए थे। उनसे शंखण नामक पुत्र का जन्म हुआ था। शंखण के पुत्र सुदर्शन और सुदर्शन के अग्निवर्ण हुए।

शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुःसुतः।
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषः प्रशुश्रुकात्।।41।।

'अग्नि वर्ण के शीघ्रग और शीघ्रग के पुत्र मरु थे। मरु से प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक से अम्बरीष की उत्पत्ति हुई।

अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः।
नहुषस्य ययातिस्तु नामागस्तु ययातिजः।।42।।
नामागस्य बभूवाज आजा् दशरथोऽभवत्।
अस्माद् दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।।43।।

'अम्बरीष के पुत्र राजा नहुष हुए। नहुष के ययाति और ययाति के पुत्र नाभाग थे। नाभाग के अज हुए। अज से दशरथ का जन्म हुआ। इन्हीं महाराज दशरथ से ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए हैं।

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम्।
इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम्।।44।।

इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए राजाओं का वंश आदिकाल से ही शुद्ध रहा है। ये सब-के-सब परम धर्मात्मा, वीर और सत्यवादी होते आये हैं।

रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि।।45।।

'नरश्रेष्ठ ! नरेश्वर ! इसी इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए श्रीराम और लक्ष्मण के लिये मैं आपकी दो कन्याओं का वरण करता हूँ। ये आपकी कन्याओं के योग्य हैं और आपकी कन्याएँ इनके योग्य। अतः आप इन्हें कन्यादान करें।

(द्वादशोऽध्याय 47.51, 12, मत्स्यपुराण)

निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघू नृपौ।।
अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृति नृपः।
रघोरभूद्दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा।।
दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः।
तस्मादृशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम्।।
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत्।
रावणान्तकस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः।।
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसन्तमः।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ।।

निघ्न से अग्नि मित्र और राज रघु इन, दोनों पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनमें अनमित्र वन को चला गया, जो कृतयुग में राजा होगा। रघु से दिलीप नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई और दिलीप का पुत्र अज हुआ। अज से दीर्घबाहु और दीर्घबाहु से अजपाल नामक पुत्र हुआ, अजपाल के पु. दशरथ हुए, जिनके चार पुत्र थे।। दशरथ के ये चारों पुत्र विष्णु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए थे। जिनमें राम सबसे बड़े थे, उन्होंने रावण के वंश का समूल नाश करके रघुवंश का विस्तार किया था। भृगुवंश प्रवर वाल्मीकि ने रामचन्द्र के चरित का गुणगान किया। राम के कुश व लव नामक दो पुत्र थे, जिनके द्वारा इक्ष्वाकु वंश का विपुल विस्तार हुआ।

ॐ महाराजा डॉ. कर्ण सिंह जी का कुल कमल

रामायण और महाभारत और कई पुराणों के अनुसार सूर्यवंश में अनेक राजा तथा महाराजा हुए है। सूर्य वंश का दूसरा नाम रघुवंश पड़ा। महाराजा रघु से चौथी पीढ़ी में महाराजा दशरथ अयोध्या के शासक हुए।

(1) दशरथ

(2) श्री मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र जी, तथा

(3) लव-कुश का वंश महाभारत काल तक अयोध्या में शासन करता रहा इसी वंश में एक बृहदबल नामक राजा हुआ।

(4) बृहदबल वह कौरवों का पक्षधर था जोकि वीर अभिमन्यु के हाथों मारा गया था बृहत्बल का उत्तराधिकारी सुदर्शन अयोध्या का शासक था।

(5) सुदर्शन के दो बेटे हुए अग्निवर्ण और अग्निगिरि

(6) अग्निवर्ण

अग्निगिरि साधु बनकर गंगा के तट पर अज्ञातवास में रहने लगा। वह इससे भी तंग आ गया और साधुओं के साथ पंजाब की ओर आ गया उसके तेज के प्रभाव से उसे लोग राजर्षि कहने लगे।

राजा कांगड़ा (नगरकोट) ने अग्निगिरि को देखा और युवावस्था में योगी होने का कारण पूछा। जब राजा को पता चला कि अग्निगिरि तो सूर्यवंशी महाराजा अयोध्या का राजकुमार है तो राजा कांगड़ा की बेटी वर .... थी। कांगड़ा के राजा ने अपनी बेटी का विवाह अग्निगिरि से कर दिया और दहेज में कांगड़ा का बहुत-सा क्षेत्र दे दिया जिसकी सीमा रावी नदी तक थी। उसने रावी नदी को पार करके .... में प्रवेश किया और यहाँ के बहुत बड़े क्षेत्र पर अधिकार .... और एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर दिया। (7) अग्निगिर; (8) वायुश्रव, (9) प्रमित्र; (10) लाखो देव; (11) ख्यात जे .... (12) अग्निगर्भसानी; (13) बाहुलोचन निःसंतान था अतः उसके भाई जाम्बु लोचन ने उसके निधन के पश्चात् सत्ता संभाली। जाम्बुलोचन ने निर्माण किया उसने अपने नाम पर जम्बनगर बसाया जोकि उस समय से जम्मू नगर के नाम से सारे संसार में प्रसिद्ध है।

(14) पूर्ण कर्ण
(15) दयाकर्ण
(16) धौकर्ण
(17) प्रह्लाद
(18) धर्मकर्ण
(19) अग्निकर्ण
(20) शक्तिकर्ण
(21) शिवप्रकाश
(22) शाम प्रकाश
(23) ज्योतिष प्रकाश
(24) पुरुष प्रकाश
(25) रतन प्रकाश
(26) ब्रह्म प्रकाश
(27) जाम प्रकाश
(28) सिन्धुदेव
(29) हरिश्चन्द्र
(30) हिरण्य कमल
(31) दयालु वर्ण
(32) तेज वर्ण
(33) हेम वर्ण
(34) वाली वर्ण
(35) बोध अर्जुन
(36) बज्र बल्लभ
(37) शिव बल्लभ
(38) कमल बल्लभ
(39) राज बल्लभ
(40) भानु बल्लभ
(41) समुद्र यक्ष
(42) हृथ यक्ष
(43) भानु यक्ष
(44) शंख वर्ण
(45) मृण वर्ण
(46) धर्म ब्रह्म
(47) जयकार
(48) देवकार
(49) मूमदत्त
(50) वहीदत्त
(51) कर्मदत्त
(52) क्षेमदत्त
(53) जयदत्त
(54) विजयदत्त
(55) दामोदर चन्द
(56) उदय चन्द
(57) मक्खन चन्द
(58) समुद्र भूषण
(59) जगत सिंह
(60) भगत सिंह शक्ति भूषण
(61) गजे सिंह

(62) अजय सिंह
(63) देव गुप्त
(64) राम गुप्त
(65) चन्द्र गुप्त
(66) नन्दी गुप्त
(67) आद राव
(68) देव राव
(69) देव रावगर्न्ध राय
(70) पदम राय
(71) क्षेम राय
(72) खखर राय
(73) सुन्दर राय
(74) जगत राय
(75) सिन्धु राव
(76) जगत राय
(77) पूद राय
(78) योग राय
(79) मिलन हंस जिन का वंश मन्हास है।
(80) सूर्य हंस
(81) गंगाधर
(82) देवताधर
(83) सरमलाधर
(84) कीर्तिधर
(85) अजयधर
(86) विजयधर
(87) बजरलाधर
(88) सूर्यदेव
(89) भोज देव
(90) सोमदेव
(91) प्रह्लाद देव
(92) अवता देव
(93) जस देव
(94) बजरला देव
(95) खेवरदेव
(96) संग्रामदेव या वज्रधर
(97) चक्रेदेव चक्रधर
(98) नृसिंह देव
(99) माल देव
(100) हमीर देव
(101) भीम देव
(102) अजायब देव
(103) वीरम देव
(104) हासल देव
(105) समेल देव
(106) संग्राम देव
(107) भूपत देव
(108) हरदेव
(109) गजे सिंह
(110) ध्रुव देव
(111) रणजीत देव
(112) ब्रजराज देव
(113) सम्पूर्णादेव दलीलदेव
(114) जीतसिंह
(115) जोरावर सिंह
(116) किशोरा सिंह
(117) महाराज गुलाब सिंह
(118) महाराजा रणवीर सिंह
(119) महाराजा प्रताप सिंह
(120) महाराजा हरिसिंह
(121) महाराजा डॉ. कर्णसिंह
युवराज विक्रमादित्य जी, महाराज कुमार अजातशत्रु जी,

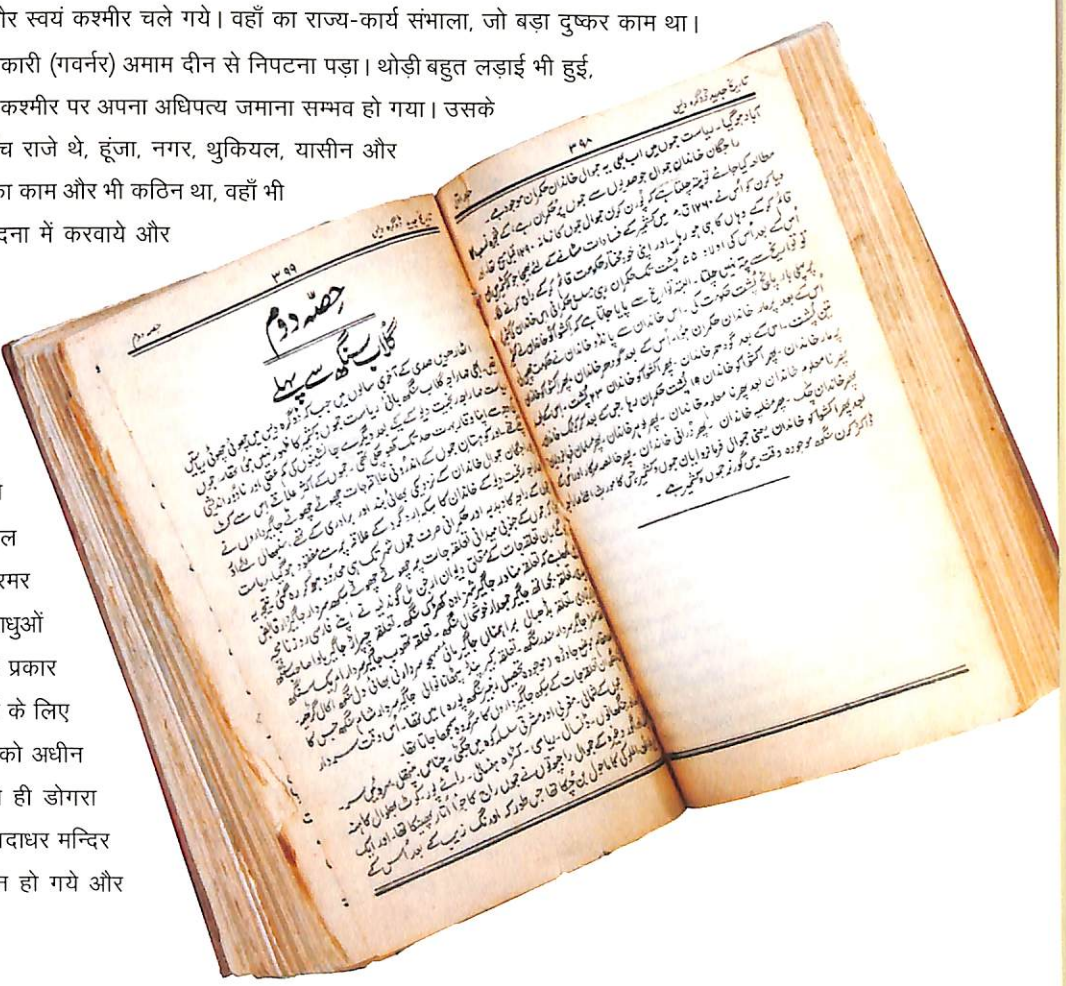
राजधर्म और रघुकुलादर्श : धर्म, संस्कृति एवं डोगरा शासक

भारत की संस्कृति में धर्म का स्थान सर्वोपरि है। हमारे स्मृतिकारों ने भी धर्म और इसके प्रति निष्ठा का होना अत्यन्त आवश्यक माना है। यदि हम धर्म की रक्षा करते हैं तो हमारे द्वारा रक्षित धर्म हमारी रक्षा करेगा और यदि हम इसे नष्ट करते हैं तो यह हमें मार डालेगा।

धर्म के निष्ठावानों ने कहा भी है कि धर्म का परिपालन राजा द्वारा करणीय है। इसलिए प्रजा का आचरण उन्हीं के द्वारा होता है। "यथा राजा तथा प्रजा", यह उक्ति हमारे राज्य के डोगरा-शासकों पर पूर्णतया लागू होती रही है। हमारे डोगरा-महाराजाओं ने तो धर्म का चिंतन और अनुसरण तो किया और प्रजा को भी यही लक्ष्य बतलाया और आस्था रखने का उपदेश भी दिया।

सन् 1750 में जम्मू का राज्य राजा रणजीत देव ने सम्भाला, उसके पहले का इतिहास अधिक उपलब्ध नहीं है। रणजीत ने इस नगर को प्रशस्त किया और धर्म की स्थापना भी की। जहाँ पंजतीर्थी की स्थापना की, वह पंजतीर्थी कहलाया। उनमें एक ही थोड़ा-बहुत बचा है, शेष तो है नहीं। दो स्थान हैं, जो तीर्थ थे। कारण, राजा व्रजराज देव और आगे राजा अजीत सिंह के समय जम्मू पर पंजाब की सिख मिसलों के आक्रमण आरम्भ हो गये। इन्होंने इतनी लूटमार मचा दी कि नगर की समस्त सम्पदा और वैभव धूलि-धूसरित हो गया। जम्मू नगर सोने की मण्डी थी, जवाहरात का व्यापार-केन्द्र था और शान्ति का गृह था। फ़ारसी के इतिहासकारों ने इसे 'दार-दउल-अमन' कहा है। अर्थात् शान्ति-गृह। यही कारण था कि इसका दर्जा "बाईस राज पहाड़" में जम्मू को सरदारी मिली। "बाईस राज पहाड़ दे बिच जम्मू सरदार" (ग्यारह राज रावी के इस ओर और ग्यारह उस पार)। 1822 तक इस नगर की नौका डगमगाती रही और जब महाराजा गुलाब सिंह जी को जम्मू का राज्य प्रदाप्त हुआ, तो उन्होंने पुनः इसकी संस्कृति और धर्म को उजागर करना आरम्भ किया। यह नगर धर्म-नगरी और तीथ-स्थान के नाम से प्रसिद्ध होने लग पड़ा। महाराजा सभी धर्मो के प्रति आस्था रखते थे। उन्होंने यहाँ मन्दिरों का निर्माण आरम्भ किया, तो बावे में मुसलमानों के लिए मस्जिद भी बनवाई। जम्मू में मुसलमानों को राजा रणजीतदेव ही लाया था। उनको एक विशाल मस्जिद मस्तगढ़ मुहल्ले में राजकोष से बनवा दीं यह एक आश्चर्य का विषय है कि महाराजा गुलाबसिंह एक महान् सैनिक थे, उनके हृदय में उतनी ही धर्म-परायणता भी थी। जम्मू और श्रीनगर में धर्म-स्थल बनवाये थे और शान्ति की स्थापना भी की। जम्मू में रघुनाथ मन्दिर की नींव उन्होंने ही रखी थी।

इसके अतिरिक्त उन्होंने सूई-सिंबली, सुचेतगढ़ और उत्तरवाहिनी में भी मन्दिरों की स्थापना की। उन्होंने 1848 में जम्मू का राज्य महाराजा रणवीर सिंह जी को दिया और स्वयं कश्मीर चले गये। वहाँ का राज्य-कार्य संभाला, जो बड़ा दुष्कर काम था। श्रीनगर में ही सिख राज्य के समय के उच्च अधिकारी (गवर्नर) अमाम दीन से निपटना पड़ा। थोड़ी बहुत लड़ाई भी हुई, परन्तु उनकी अनुभवी समझ और वीरता से उन्हें कश्मीर पर अपना अधिपत्य जमाना सम्भव हो गया। उसके उपरान्त गिलगित्त जैसे दूर के क्षेत्र में, जहाँ पाँच राजे थे, हूंजा, नगर, थुकियल, यासीन और चितराल, उन्हें वश में करने और ठिकाने लगाने का काम और भी कठिन था, वहाँ भी उन्हें सफलता ही प्राप्त हुई। उन पाँचों से अहदना में करवाये और उन्हें अपने अधीन कर लिया।



कश्मीर में कई मन्दिर टूटे थे, उनकी मरम्मत कराई गयी, जिनमें पूर्व कुशासन-काल में प्रतिष्ठा बन्द थी, पुनः आरम्भ करवाई। वहाँ शारिका भगवती और तूला-मूला में स्थित महान् देवी का पूजन भी आरम्भ हुआ। झेलम नदी के तट पर अमीराकदल के निकट, गदाधर मन्दिर खूब सँवारा और संगमरमर की टायलों से सुसज्जित किया। श्रीनगर में भी साधुओं और भक्तों के निर्वाह के लिए आज्ञाएँ दीं। उसी प्रकार स्वामी अमरनाथ के दर्शनों को आने वाले यात्रियों के लिए उचित प्रबन्ध किये। महाराजा जी को चितराल को अधीन करने में बड़ी कठिनाई आ रही थी, वहाँ कितने ही डोगरा सिपाहियों की मृत्यु भी हो गई थी। एक दिन वे गदाधर मन्दिर में बैठ गये, आँखें बंद कर, हाथ जोड़ कर, मग्न हो गये और

कहा, "मैं यहाँ से तब उठूँगा, जब चितराल पर विजय का समाचार मिलेगा।" वहाँ विचित्र ही बात हुई। उनकी बात गदाधर जी ने सुन ली। उनके सामने कपड़े में लपेटी दो चिट्ठियाँ रखीं अधिकारियों नें एक में लिखा था कि रियासी में महाराजा रणवीर सिंह जी की बड़ी महारानी सपेही जी ने पुत्र को जन्म दिया है। दूसरी में लिखा था चिलास पराजित कर लिया गया है। महाराजा ने नत-मस्तक होकर भगवान् का धन्यवाद किया। वे हर्ष से गद्‌गद् हो गये थे। उन्होंने अपने पुत्र रणवीर सिंह जी को लिखा, "मेरे प्रपौत्र का नाम प्रताप सिंह रखा जाय।" अगले वर्ष, उन्होंने महाराजा रणवीरसिंह और महारानी को पुत्र सहित श्रीनगर बुला भेजा। जब वे सब श्रीनगर पहुँचे, तो सर्वप्रथम उन्हें गदाधर मन्दिर ले गये और पूजन करवाया। उसके बाद हरि पर्वत ले गयें वहाँ हवन-यज्ञ हुआ और शारिका देवी का पूजन भीं गदाधर मन्दिर पर सोने की चादर चढ़ा दी। उनका निधन 1858 में हो गया था। कुछ समय वे बीमार पड़ गये थे। उन्होंने रुग्ण-अवस्था में कश्मीर का राजा भी रणवीर सिंह जी को दे दिया। जम्मू का राज्य तो 1848 में ही दे चुके थे। उनकी यह अनुकंपा अद्वितीय थी ऐसा उदाहरण कहाँ मिल सकता है! महाराजा जी का निधन श्रीनगर में हुआ। उनका अन्तिम संस्कार उनके सुपुत्र महाराजा रणवीससिंह ने ही किया था। उनकी अंतिम शव-यात्रा के साथ असंख्य जनता थी, जिसमें सभी धर्मो के लोग थे। वहीं उनकी समाधि भी बनवाई गई। दूसरी समाधि जम्मू में भी बनवा दी गई।

महाराजा गुलाब सिंह जी के उपरान्त समस्त राज्य का उत्तरदायित्व महाराजा श्री रणवीरसिंह जी ने बड़े साहस और योग्यता से निभाया। राज्य-शासन में उच्चतम शासकीय व्यवस्था देने के साथ-साथ धर्म और उससे सम्बन्धित कार्यो को भी उजागर किया। नव–मन्दिरों का निर्माण भी आरम्भ हुआ। इतना ही नहीं, अपनी महारानियों को भी इस काम के लिए प्रोत्साहित किया। गुम्मट के नीचे महारानी बलौरी जी का मन्दिर, जुलाह के मुहल्ले में रानी कहडूरी का शिव-मन्दिर इत्यादि मन्दिरों से यह नगर सुसज्जित हो गया। इसी कारण लोग इसे मन्दिरों का शहर कहते हैं।

उन्होंने स्वयं सर्वप्रथम श्री रघुनाथ मन्दिर का निर्माण कियां ऐसा विशाल और सर्व-दृष्टि से सम्पन्न भारत में कोई भी मन्दिर नहीं है। इसके आहातों में शालिग्रामों का आभास कराता है मन्दिर की अनुपमता और विशालता कां इनमें देवी-देवताओं की मूर्तियाँ और नाहर वाली परिक्रमा में दश अवतारों के मन्दिर और अन्दर श्री रामचन्द्र, जानकी और लक्ष्मण जी की विशाल मूर्तियों के दर्शनों से भक्तजन हर्ष से प्लावित हो जाते हैं। नरेश ने एक और रणवीरेश्वर मन्दिर का निर्माण भी किया। मन्दिर के भीतर शिव और पार्वती की सुन्दर मूर्तियों के अतिरिक्त विशाल शिवलिंग और बिलावर के सुन्दर लिंग भी। फिर बल्लौर के लघु शिवलिंग भी।

रघुनाथ मन्दिर में श्री रघुनाथ पाठशाला में संस्कृत-वेद-वेदांग के साथ-साथ शास्त्री-परीक्षण तक का पठन आरम्भ भी हुआ। विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क भोजन और छात्रावास का भी प्रबन्ध था। इससे उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों ने अपनी योग्यता का परिचय देशभर में दिया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत पुस्तकालय की स्थापना की, जिसका दृष्टान्त् भी भारत में कहीं नहीं मिलेगा। अधिकतर ग्रन्थ ताड़-पत्र और भोज-पत्र पर लिखित हैं। विद्या का ऐसा भण्डार अद्वितीय है। इसमें भारत के अतिरिक्त विदेशी विद्वानों ने भी विद्या का लाभ उठाया है। नरेश को जब भी पता चलता कि किसी नगर में अमुक संस्कृत-ग्रन्थ है, उसे अधिक-से-अधिक मूल्य देकर मँगवा लेते। यहाँ तक कि केरल से अथर्ववेद की एकमात्र प्रति बहुत ज़्यादा भारी मूल्य देकर मँगवाई। यह समस्त देश में एकमात्र ग्रन्थ था, जो लोक-राज में गुम हो गया। आज तक इसका पता देने वाला भी कोई नहीं है। महाराज ने धर्मार्थ-विभाग, जो आज धर्माथ-ट्रस्ट के नाम से विख्यात है, प्रचुर धन से भर दिया। इसके अनन्तर देश के समस्त तीर्थो में सदाव्रत भी चलाये। उन्होंने उत्तरवहिनी को तीर्थ का दर्जा दिया और वहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना भी की। कारण, यह स्थान बड़ा ही पवित्र है, अन्तःसलिला देविका नदी के तट पर उनकी इच्छा थी कि जम्मू से उत्तरवहिनी तक मन्दिरों की कतार बिछा दी जाए और इस माध्यम से जम्मू नगर उत्तरवहिनी तक फैल जाए। यह इच्छा उनकी पूरी नहीं हो सकी, वे पूर्ण आयु नहीं भोग सके। वे 1885 में मण्डी-राज-प्रसाद में ही ब्रह्म-लीन हो गये।

महाराजा रणवीरसिंह जी का रुतबा गुप्त महाराजाओं से किसी प्रकार भी कम नहीं हो सकता। वे प्रजा-वत्सल, सबके पालनहार और विद्या और विद्वानों के पोषण थे। उनकी अंतिम यात्रा में सहस्रों व्यक्ति शामिल हुए। युवा, वृद्ध और जो बालक भी रुदन कर रहे थे कि ऐसा नरेश कहाँ उपलब्ध होगा।

महाराजा के ज्येष्ठ पुत्र प्रताप सिंह सिंहासन पर शोभित हुए। उन्होंने पितामह और पिता द्वारा चलाये नियमों और धर्म-परम्पराओं को स्थाई रखा। वे भी तीर्थ-यात्रा पर जाते थे और उसी प्रकार चढ़ावा चढ़ाते। रघुनाथ मन्दिर जम्मू और गदाधर मन्दिर श्रीनगर में परिक्रमा करतें रघुनाथ मन्दिर में वर्ष में एक बार वेदशास्त्र सम्मेलन होता, जिसमें दक्षिण भारत के विद्वानों को भी निमंत्रित किया जाता था। उन्हें प्रचुर धन-दक्षिणा से पूजित किया जाता। महाराजा की पाँच रानियाँ थीं, पाँचवीं थी चाड़क, जिसने श्रीनगर में पुत्र को जन्म दिया, परन्तु शिशु आठ मास की आयु में ही काल का ग्रास बन गया। समस्त राज्य में शोक छा गया था।

अंग्रेज़ सरकार ने 1900 में उनके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रखा, उन्हें राज्य-च्युत करने और जम्मू-कश्मीर को ब्रिटिश-भारत में मिलाने के लिए, परन्तु कलकत्ता के दैनिक अंग्रेज़ी अमृत बाज़ार-पत्रिका के मालिक और सम्पादक मोतीलाल घोष के सम्पादकीयों ने विदेशी सरकार के षड्यन्त्र का भाण्डा फोड़ किया। महाराजा नाम का तो बना रहा, परन्तु उनके कई राजकीय अधिकार छीन लिए जो पश्चात् धीरे-धीरे लौटा दिए गये। महाराजा ने चौगान सलाथियाँ में कोष्ठी-भवन बनवाया, जहाँ प्रतिदिन आठ घंटे हवन होता था। टकसाल-घर में, जहाँ आजकल लड़कियों का हायर सैकेण्डरी स्कूल है, निर्धनों को भोजन दिया जाता था। उनके राज्य में भी पूर्ववत् समस्त मन्दिरों में घड़याल शंख-ध्वनियाँ, कीर्तन और मस्जिदों में अज़ां और गुरुवाणी भी संपन्न होती थी। ब्रिटिश पादरियों की प्रार्थना पर नीचे गिरजाघर बनवाया और ईसाइयों को बेरोक-टोक के प्रार्थना की आज्ञा भी मिली। मिशन स्कूल भी बना और मुख्य पादरी अलेग्जैंडर नियुक्त हुए।

जम्मू में रणवीर नहर का लाना, सुचेत गढ़ से श्रीनगर तक सड़क और पहले था, श्रीनगर से कोहाला तक सड़क का निर्माण। जम्मू में बिजली का आरम्भ और रेलवे से जम्मू का मिलाना, प्रिंस ऑफ वेल्स् कॉलेज की स्थापना। श्रीनगर में स्थापित प्रताप कॉलेज ने भी शिक्षा के क्ष त्र में बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्राप्त की। रणवीर नहर जम्मू के लिए अनाज का मण्डार सिद्ध हुई। संसार भर में, यहाँ की खास उपज बासमती चावल स्वादिष्ट और उत्तम चावल का प्रतिमान बन गयी। जम्मू और रणवीरसिंह तहसीलों का क्षेत्र जंगल था। यहाँ नील गायें, सूअर और चीते थे। यह एक उपजाऊ सुन्दर क्षेत्र बन गया। इसी नहर से जम्मू को बिजली भी मिली। महाराजा ने बनारस में हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना पर महामना मालवीय जी को पचास हज़ार रुपये का अनुदान दिया और लाहौर में सनातन धर्म कॉलेज को पच्चीस हज़ार रुपए दिए थे। तीर्थों पर धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा दान-भेंटें भी मिलती थीं। वे पहले, होली पर हाथी पर सवार होकर समस्त नगर में होली भी खेलते थे। महाराजा का निधन 1925 में नवरात्रों में श्रीनगर में हुआ। उनकी अंतिम-यात्रा में असंख्य जनता सम्मिलित हुई थी।

1925 में महाराजा हरिसिंह जी को राज्य तो मिल गया पर सिंहासन फरवरी 1926 में ही मिला। उनके राज्याभिषेक को देखने के लिए कई राजे-महाराजे, नवाब और पंजाब भर से लोग भी आये थे। जम्मू नगर लाल रंग और पताकाओं से सुसज्जित हो गया। पारसी थियेटर कम्पनी को अजायबघर में रंगशाला बनाकर दी गयी। वहाँ महीना भर नाटकों का मंच होता रहा। बड़े-बड़े नाटक-कर्मी भगवान् दास और मास्टर निखार भी आये थे। जम्मू की अमेच्युर कल्ब ने महाभारत, यहूदी की लड़की और बिल्वमंगल नाटक मंचित किए। नगर के सभी मन्दिरों को सुसज्जित भी किया गया।

महाराजा का प्रथम अभिभाषण हिन्दी में था : 'मेरा धर्म न्याय होगा।' यह बड़ी भारी उक्ति थी जिसे उन्होंने चरितार्थ भी किया। समाज-सुधार के कार्य का उत्थान हुआ। साहूकारा बिल और स्टेट सबजैक्ट-सर्टीफिकेट बिल बड़े लाभदायक थे। मुसलमानों को हाई स्कूल बनाने के लिए गण्डू छावनी और ईदगाह के लिए भूमि और दीवार के लिए बड़ी रक़म दी। वे ईद के दिन ईदगाह में आते थे। आर्य समाज को पुरानी मण्डी में इमारत और स्कूल के लिए भूमि और साथ ही पुरानी इमारत भी दी।

1926 से 1931 तक महाराजा हरिसिंह जी का राज्य गुप्त-काल की तरह था, परन्तु उस समय ब्रिटिश सरकार ने बटाले के रबे कादयानी मिर्जा को बहकाकर राज्य में साम्प्रदायिक दंगे करवा दिए। उस पर लाखों रुपये व्यय भी हुए। कारण, यह था कि महाराजा ने 'गोलमेज़ कान्फ्रेंस 1930' में लंदन में भारत को स्वतन्त्रता देने का पक्ष लिया था। सरकार जल-भुन गई। महाराजा ने भी अपनी सामर्थ्यानुसार ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट को जम्मू से निकाल कर सियालकोट भेज दिया। डैनिस गेट को तोड दिया। यह बात भी उल्लेखनीय है



श्री रघुनाथ मन्दिर के संस्थापक महाराजा गुलाब सिंह

कि महाराजा गुलाब सिंह के समय से ही कश्मीर में ज़मीन के मालिक महाराजा ही चले आ रहे थे। महाराजा हरिसिंह जी ने ज़मीन की मिल्कियत काश्तकारों को वापस कर दी। वह एक बड़ा भारी काम था। जो मस्जिदें महाराजाओं ने बनवाई थीं, वे भी मुसलमानों को दे दीं।

1947 में भारत-विभाजन के समय उन्होंने अपना दायित्व बड़ी दूरदर्शिता एवं लोकतन्त्र की मर्यादा के साथ निभाया। परन्तु पाकिस्तान ने 21–22 अक्तूबर की रात को मुज़फ़्फ़राबाद पर आक्रमण कर मार-काट मचा दी और आक्रमणकारी बढ़ते गए और श्रीनगर के द्वार तक आ पहुंचे। नरेश ने अपने प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन के साथ भारत से विलय करने के लिए आवेदन-पत्र भेजा। बड़ी कठिनाई के बाद वह स्वीकृत हुआ और 27 अक्तूबर को भारतीय सेना कश्मीर पहुँची। जाते ही पठानों को खदेड़ना आरम्भ कर दिया। महाराजा हरिसिंह जी के शासन-काल को प्रत्येक व्यक्ति ने सराहा। यहाँ तक कि जम्मू में शेख अब्दुल्ला ने भी उन्हें सदाचारी और गौरवशाली कहा था।

1949 में उन्हें बम्बई जाना पड़ा था और वहीं पर 1961 में उनका निधन हो गया। उस अवसर पर, जम्मू शहर में ही नहीं, अपितु प्रत्येक स्थान पर भारी शोक छा गया था। उस समय, इस रियासत में लोकतन्त्र शेख अब्दुल्ला के प्रथम मंत्रित्व में स्थापित हो चुका था, इसलिए महाराजा हरिसिह के सुपुत्र युवराज कर्णसिंह जी को उत्तराधिकारी के रूप में राज्य में हेयर एपैरेंट और फिर उन्हें सदरे-रियासत के पद पर आसीन किया गया। उस पद पर वे 1966 तक रहे और रियासत के संविधान में संशोधन के उपरान्त वे राज्यपाल बने। 1967 में उन्होंने अपना पद छोड़ दिया, केंद्र में उड्डयन और पर्यटन-मंत्री बने। वे अमरीका में भारत के राजदूत भी रहे। लोक-सभा के निर्वाचन में उन्हें तीन बार भारी विजय भी प्राप्त हुई। आज वे राज्य सभा में कांग्रेस-दल के चेयर-पर्सन हैं।

महाराजा कर्ण सिंह ने जिन-जिन पदों पर कार्य किया है, उनमें सफलता प्राप्त की और यश का उपार्जन किया। अमेरिका में राजदूत का कार्यभार बड़ी दक्षता के साथ निभाया और अभिभाषणों से वहाँ के लोगों को भारतीय संस्कृति और प्राच्य-इतिहास का

अवलोकन भी कराया। वे संसार भर का भ्रमण कर चुके हैं, एक नहीं कई-कई बार। अपने राज्य में विश्वविद्यालय की स्थापना और रेलवे पठानकोट से जम्मू लाने में सहयोग और सांस्कृतिक कार्यों का प्रोत्साहन इनकी कार्यकुशलता के प्रतिबिम्ब हैं। डोगरी भाषा के प्रति इनका स्नेह शैशवावस्था से ही रहा है। इनकी यह मातृभाषा है और इसको प्रोत्साहन देते रहे हैं।

जम्मू : संस्कृत संदर्भ

वर्तमान जम्मू व कश्मीर प्रदेश का जम्मू क्षेत्र पूर्व में रावी नदी, पश्चिम में युद्ध-विराम-रेखा, दक्षिण में सियालकोट के समीप सुचेतगढ़ और उत्तर में पीर-पंचाल की पर्वत-शृंखला तक फैला हुआ है।

ऋग्वेद में उस युग के जम्म-क्षेत्र की शतद्रु (सतलुज) और चन्द्रभागा (चिनाब) का बड़े आदर और श्रद्धा के साथ वर्णन प्राप्त होता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि हमारे ऋषियों और मुनियों ने इन्हीं नदियों की एकान्त तथा शान्त घाटियों में घोर तपस्या और कठोर साधना करके वेदों के मन्त्रों और ऋचाओं का साक्षात्कार किया था। इसलिए जम्मू की पवित्र धरती ऋषियों-मुनियों और देवी-देवताओं की लीलास्थली रही है।

वाल्मीकीय रामायण में अध्योध्या काण्ड के तेरहवें सर्ग में बहुत स्पष्ट लिखा है कि जब भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने चौदह वर्षों के वनवास के लिए प्रस्थान किया, तो उस समय महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गए। उस समय रामचन्द्र के छोटे भाई भरत अपने ननिहाल कैकेय देश में थे। कैकेय देश आज का काश्मीर ही था। उन्हें सन्देश मिलने पर जब भरत अयोध्या की ओर चल पड़े, तो उन्हें मार्ग में जिन बड़ी-बड़ी नदियों को पार करना पड़ा था, उनमें शतद्रु नदी का भी उल्लेख मिलता है, जिसे आजकल सतलुज कहा जाता है। इस नदी को पार करके भरत जब जम्बूप्रस्थ स्थान पर रुके थे। निश्चित रूप में वह जम्बूप्रस्थ आज का जम्मू ही था।

चन्द्रभागा से परे तहसील अखनूर से लेकर तहसील रियासी का मैदान-क्षेत्र और तहसील उधमपुर का मैदानी-भाग किरमची तक का सारा इलाका मत्स्य देश कहलाता था। मत्स्य देश की राजधानी अखनूर ही थी। वर्तमान किरमची मत्स्य नरेश्या विराट के प्रधान सेनापति एवं प्रधानमंत्री कीचक का निवास-स्थान ही था, क्योंकि भाषावैज्ञानिक दृष्टि से किरमची शब्द 'कीचक' शब्द के उच्चारण से मिलता-जुलता है। इसके अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरण में भी कठुआ ज़िला की स्थिति के संकेतों में उलझ और बेईं नामक नदियों का उल्लेख भी मिलता है। अब तो वर्षा ऋतु में ही पानी रहता है। मगर पाणिनि-कालीन जम्मू में इन नदियों में सारा वर्ष पर्याप्त मात्रा में पानी रहता था तथा इनमें भयंकर मगरमच्छों का स्थायी निवास रहता था। इन नदियों को नौकाओं की सहायता के बिना पार करना सम्भव न था। एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ नीलमत पुराण में जम्मू-प्रान्त की कई सुप्रसिद्ध नदियों का वर्णन मिलता है। इसमें एक देविका नामक पवित्र नदी भी है। इसके विषय में स्पष्ट रूप से पुराण में लिखा है कि रावी और चिनाब के मध्यवर्ती मद्रदेश में भगवान् शंकर की कृपा से देविका नदी का अवतरण हुआ है : –

"सर्वत्रदेविकातीर्थ क्षेत्रं क्रोशचतुष्टयम्।
यत्रकूपतटाकाख्यं पुण्यं सर्वमशेषतः।।"

इसके अतिरिक्त एक तौषी नामक नदी का भी बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख आया है। इसे सूर्यपुत्री भी कहा गया है, अब इसे तवी नदी के नाम से पुकारा जाता है। तवी नाम से छम्ब क्षेत्र में मानवर तवी, नौशहरा तथा पुंछ के पास भी तवी नामक नदियाँ बहती हैं, इनका भी उल्लेख मिलता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तवी तो यही है, जो कि बाहूदुर्ग एवं महाकाली और महामाया के मन्दिरों और जम्मू नगर के मध्य बहती है और जो सुद्धमहादेव से भी ऊपर के कई पहाड़ों से निकलकर और सियालकोट के पास हेड मराला में चन्द्रभागा में मिल जाती है।



2

श्री रघुनाथ मंदिर की वैचारिक आधार भूमि

श्री रघुनाथ मंदिर की वैचारिक आधार भूमि

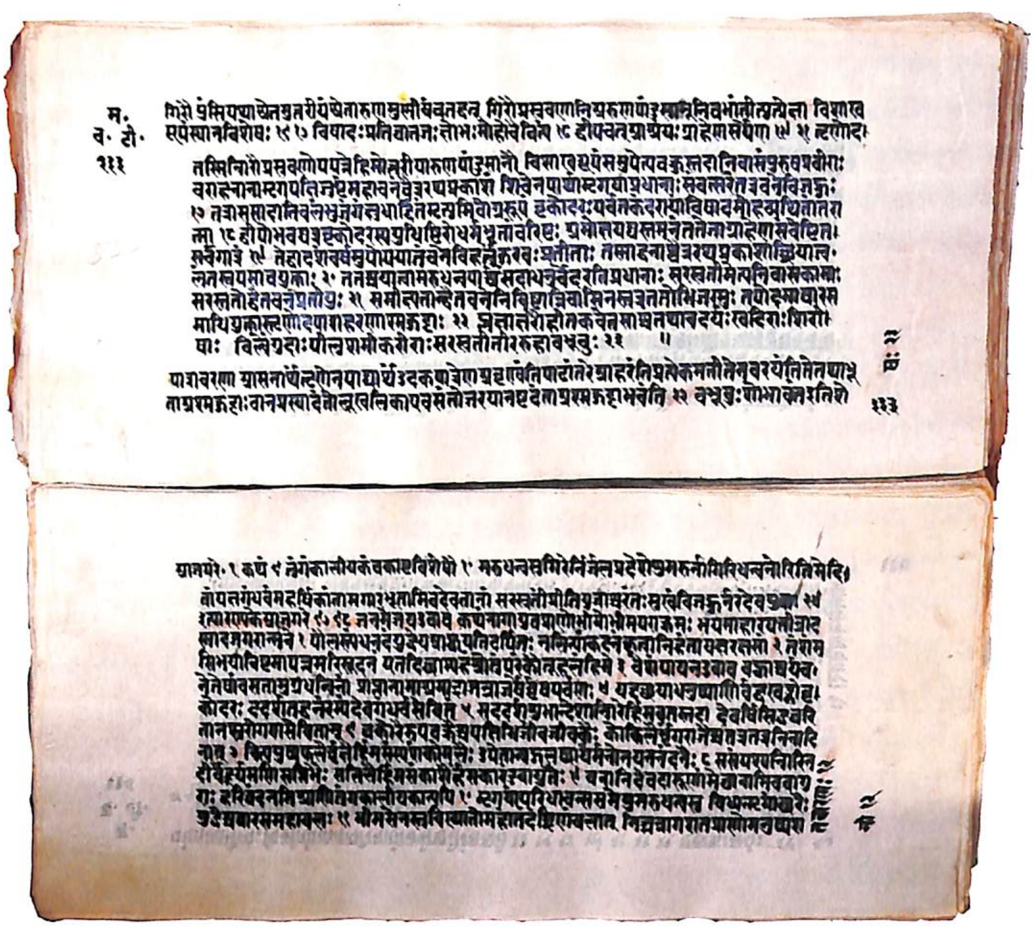
भूमिका

श्री रघुनाथ मंदिर के केंद्र में प्रभु श्रीराम विराजते हैं और उनकी उपस्थिति भारतीय चिंतन परंपरा की एक अनिवार्य कड़ी है। मंदिर के प्रांगण में प्रवेश करने पर हमें एक शिलालेख मिलता है जिसमें डोगरी भाषा और लिपि में मंदिर की स्थापना के विषय में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। इस शिलालेख का चित्र यहाँ दिया जा रहा है और साथ ही उसका हिन्दी रूपान्तर भी प्रस्तुत है जिसे श्री रणवीर संस्कृत शोध संस्थान के निदेशक डॉ. धनीराम शास्त्री एवं सह-निदेशक डॉ. कमल किशोर मिश्र ने किया है। श्रीराम के चिंतन, पूजन और अनुष्ठान में जिन स्रोत रचनाओं को स्वीकार किया गया है उनमें रामपूर्वतापनीयोपचिन्हें, श्रीरामयंत्र, श्रीरामगीता विशेष स्थान है। इसे ध्यान में रखकर पाठकों के अध्ययन तथा मनन के लिए इन तीन स्रोतों का मूल तथा हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत है।

क. शिलालेख*

ऊँ श्रीरघुनाथोविजयति

सभ लोकों को विदित होवे कि सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की दया से स्वस्तिश्रीमन्महाराजाधिराज इन्द्र महेन्द्र सिपर सलतनत जनरल प्रसाकर इङ्लिशिया मसीरावाम कैसर हिन्दी जी.सी.एम.आई.सी.आई.सी.आई. जंबु काश्मीर तिब्बतादि अनेक देशाधिपति प्रभुवर परम कारुणिक महाराजा साहिब बहादुर श्री 108 रणवीससिंह जी ने सम्पूर्ण लोकों के उपकार वास्ते अपने इष्टदेव श्री 108 रघुनाथजी की मूर्ति अपने राज्याभिषैकात्संवत् 3 ग्रौ विक्रमादित्य संवत् 1915 में स्थापन किया और इस मंदिर के मार्फत संकल्प करके ग्राम और नगर रुपैया लगाकर अनेक प्रकार के धर्मर्थ की व्यवस्था कर दिया है। जैसा रघुनाथ पाठशाला वेद 4 वेदांग और छः शास्त्र की 1 सदावर्त अन्न पक्का तथा सुक्का 1 गोपालन, जलपिलाना, अमारत मन्दिर और जलाशय धर्मशाला की 1 पूजा पंचायत, की 1 वस्त्र भूषण ड़ाकुर जी के उत्सव पाठ सहस्रनाम 1 रामनाम, पुस्तक दान, वस्त्र अभ्यागतों के वास्ते कठारी दान 1 माला 1 छत्री 1 जोड़े 1 शालिग्राम 1 शिवस्थापन, गायशाला (यज्ञशाला) पुष्पतुलसी, बिल्वपत्री पूजा वास्ते यज्ञोपवीत 1 प्रतिमास अमावस्या को पितृश्राद्ध करवाने, इत्यादि की अनेक प्रकार की धर्मव्यवस्था की है। उत्तरवाहिनी में भी इसी तरह की धर्म्मर्थ की व्यवस्था है, जहाँ शिवजी जादे हैं। परन्तु परमण्डल देविका उमापति आगे प्रसिद्ध स्थान था। उत्तरवहिनी, जिस जगह में श्रीदेविका का प्रवाह उत्तराभिमुख बहता है। इसी वास्ते इसका नाम उत्तरवहिनी है। इह अत्युत्तम तीर्थ पुराणों से प्रमाण निकालकर बड़े महाराजा साहिब श्री गुलाबसिंह जी ने प्रसिद्ध किया। दसावतार मूर्ति और बहुत शालिग्राम मूर्ति सहित श्रीगदाधर जी की मूर्ति और अभि मुक्तेसर महादेव अत्युत्तम के बीच पुराण प्रसिद्ध पाँचकोस में यथास्थापन मन्दिर बनवा के शिवलिंग स्थापन किये हैं। उस स्थान के देखने से मालूम होता है कि एक दिन श्रीमहाराजा साहब श्री रणवीर सिंह जी ने देखा कि कलियुग का अधर्म बढ़ जाता है और आर्य धर्म अति कठिन होने से घटता जाता है। इस वास्ते यदि अति कठिन बात सुगमता से होने लगे आर्यलोक अपने धर्म से क्यों परांगमुख होवैं। इस वास्ते विष्णु-शिवभक्ति में बिना कोई सुगम उपाय नहीं है। यह बात विचार करके श्री रघुनाथ जी के परिवार देवता आदि की मूर्ति तथा 1,44,000 शालिग्राम इनका स्थापन किया, 10,56,000 शालिग्राम यहाँ मंगा रखे हैं। तीन लक्ष और भी स्थापन हो चुके हैं। ईश्वर की दया से थोड़े काल में 12 बारां लक्ष्य स्थापन हो



जावेंगे। तदनन्तर संवत् 1969 में श्री रणवीरेश्वर महादेव बड़े नर्मदेश्वर 11 सफटिक 11 एकमास में मन्दिर तैयार करके स्थापन किए और उत्तरवहिनी में 1,10,000 शिवजी और श्रीरघुनाथ जी की मूर्ति स्थापन का हुक्म दिया मन्दिर बनते हैं .... शिवजी नर्मदेश्वर और श्रीरधुनाथ जी की मूर्ति यहां आगे हैं। उत्तरवहिनी वह स्थान है पुरमण्डल के पास 3 कोस पर, यहाँ देविका उत्तर की ओर बहती हैं। यह स्थान श्री महाराजा साहब वैकुंठवासी श्रीगुलाबसिंह जी ने पुराणों में देखकर प्रसिद्ध किया और पुरमण्डल से लेकर इस स्थान तक अपूर्व देवस्थान पुराणों से निश्चय करके पांच कोस के बीच देविका तट में निर्माण किए। उस स्थान के देखने से सब मालूम होता है कि नर्मदेश्वर एक शालिग्राम के पूजन का कितना महात्म है तो 12बारां लक्ष के पूजन का कितना होवेगा या कोई 12बारां लक्ष का एक बार भी पूजन करेगा उसको 33 सौ वर्ष का 33 जन्म तक प्रतिदिन एक एक शालिग्राम पूजन का फल प्राप्त होगा और जो सात बार इनका पूजन करे उसने 84 जोनी पूजन किया। फेर जन्म न आवेगा। जो एक मास पूजन करे 3 कोटि 60 लक्ष का पूजन होगा। उसने प्रतिरोज प्रत्येक का पूजन किया। जो दो एकादशों का मास में पूजन करे उसको 66 सौ वर्ष तक प्रतिदिन एक एक शालिग्राम पूजन का फल होगा और जो पुरुष दो वर्ष इनका पूजन करे तो 77 कोटि 76 शालिग्राम का पूजन होगा। उसने सौ वर्ष तक रोज रोज श्वास श्वास में एक एक शालिग्राम पूजन किया। इनके पूजन वास्ते वेदपाठी ब्राह्मण नियतवृत्ती करके नियुक्त किए और जिस किसी को पूजन आकर करना अथवा करवाना होवे पूजन की सामग्री सब इस जगह में तथा रमालगिलशाह तीन आने की सामग्री से 12 बारां हजार शालिग्राम का सांग षोड्शोपचार पूजन होता है। 12बारां लक्ष के सांग पूजन को 20 बीस रु. लगते हैं। अथवा जैसी किसी की इचछा होवै तैसा पूजन करे। सामग्री भी इच्छा से लावै और जो एक हजार रु. को श्रीरघुनाथ जी के कोष में जमा करावे उसके ब्याज में सदा सर्वदा काल 12बारां हजार

शालिग्राम का पूजन हावे और इह आज्ञा दी .... श्री महाराजा साहब ने लोकोपकार वास्ते दी है, जितने प्रकार के हमारे धर्मर्थ जम्बू उत्तरवहिनी में हैं उनमें जिस प्रकार का धर्मर्थ करने की इच्छा किसी को होवे जितना रुपया जमा करवावेगा उनके सूद 8 आने कहदे लेख में कह दे लेख में वह धर्मार्थ दिया जावेगा।

हिसाब प्रतिमास मालिक के पास पहुँचेगा और ऐसे मन्दिर सदावर्त काश्मीर और त्रिकूटा भगवती में हैं और अपने राज्य के प्रत्येक जिले तहसीलों में मन्दिर बना के शालिग्राम लगा दिए हैं और प्रत्येक मंदिर में यथायोग्य पूजा सदावर्त सबके पूजा और बालकों के पढ़ने वास्ते पण्डित रखे जावेंगे इसके सिवाय गंगाजी, बद्रीनारायण, वृंदावन, काशी जी, प्रयाग, अयोध्या, गोदावरी, रामेश्वर, द्वारिका आदि प्रसिद्ध तीर्थों में सदावर्त लगाए हैं। इनकी सभ व्यवस्था पत्थर पर नहीं खोद सकते। क्योंकि सब व्यवस्था लिखने से एक पुराण बनता है अब देखो कि इस मिथ्यारूप संसार समुद्र पार होने को भक्ति से परे कोई नहीं। भक्ति बहुत प्रकार की है। जैसी किसी से हो सके वैसी करे। पूजन प्रमाण विष्णु मन्दिरों का सो धन, पुष्प तुलसी ल्याय देवी चढ़ानी मन्दिर में जाए, दर्शन करना, प्रदक्षिणा करनी नैवेधादि लगाना, धूपदीप विष्णु जी का चरणोदक लेना, विष्णु मन्दिर में नृत्य गीतादिक नेक एह सब तरह से भक्ति परम पद को देती है पर विष्णु पूजन की महिमा देख लेनी होवे रणवीर भक्ति रत्नाकर में देखो। किंचिद् यहां भी लिखते हैं श्लोक –

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति
तदहं भक्त्युपस्थिमश्नामि प्रयतात्मा।।

भाषा : श्रीगीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं; हे अर्जुन ! जो पुरुष भक्ति से मेरे को पत्र, पुष्प, फल, जल आदि वस्तु निवेदन करता है उस वस्तु को मैं प्रसन्नता से भोजन करता हूँ।

श्लोक – शालिग्राम का महात्म लिंगपुराण :

कामासक्तोऽपि यो नित्यं भक्तिभाव विवर्जितः।
शालिग्रामशिलां सजपेत् सोऽप्युतो भवेत्।।

भाषा – जो पुरुष में आसक्त हो भक्ति के बिना भी शालिग्रामों का पूजन करे, सो भी विष्णु का रूप होता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है।।

कामासक्तोऽपि कुद्धोऽपि शालिकाम शिलार्चनम्।
भक्त्या यदि वा भक्त्या भक्तिमाप्नुयात्।।

काम में आसक्त हो, क्रोधयुक्त हो, भक्ति में अथवा बिना भक्ति से शालिग्रामों का पूजन करके मोक्ष को प्राप्त होता है।

शालिग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रमसन्ततः।
कीटकोऽपि मृतोयाति वैकुण्ठ भुवनं गुहा।।

शालिग्राम शिला के चारो तरफ क्रोश क्रोश के अन्दर कीटकादि जड़ जोनी भी मृत्यु होवे तो वैकुण्ठ में जाता है। मनुष्य तो क्यों नहीं वैकुण्ठ में जावेगा। शालिग्राम शिला स्मरण करने में नाम उच्चारण से, ध्यान में पूजन से, प्रमाण करने से क्रीड हत्या को नाश करती है और पद्मपुराण में लिखा है 12बारां शालिग्राम का पूजन करे तो उसको कोटि शिवलिंग पूजन का फल होता है। भक्ति में सोलां 16 का पूजन करने से मनोवाँछित सिद्धि प्राप्त होती है बीस 2 तथा 24 चौबीस 2 के पूजन से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। बत्तीस 32 पूजने से शिवलोक मिलता है। चालीस 40 पूजने से वैकुण्ठ प्राप्त होती है। चौंसठ 64 तथा अस्सी 80 के पूजने से सायुज्य भक्ति प्राप्त होती है। सौ 100 शालिग्राम का पूजन करने वाले के घर में लक्ष्मी सदा वास करती है। सौ से जादे शालिग्राम के पूजने के फल की संख्या को ब्रह्मादि देवता भी नहीं जान सकतें देवकी विष्णु शिव भक्ति की महिमा को चारों वेद साष्टांग प्रणाम और इतिहास वर्णन करके जिसका अन्त नहीं पाया यह संसार भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में अनित्य है। तिसमें भी आदमी का जीवन पीपल के पत्र के अग्रभाग में अतक्तित जो जल बिन्दु उससे पीपल देवड़, महाराजे बड़े बड़े बादशा ऋषि, मुनि आदि इस भूमि पर ऊपर हो गए, जिनके नाम, यश, पुरुषार्थ, पुराण इतिहास तवाख आदि शास्त्रों से और उन्होंने जो कोई स्थान में शुभ वा अशुभ कार्य किए हैं उनको देखने से मालूम होता

है। नहीं तो इस भूमि ऊपर कीटा कीटाणु जीव हो गये जिनका कुछ नाम का पता नहीं और इनकी तो क्या बात है। ब्रह्मादि कल्पायु से न रहे तो इस संसार में कुछ काल तक जो नेक या बद किया है वो कार्य रहता। इस वास्ते जितना हो सके नेक काम करें, ग्रन्थ बनावें, विष्णु का मन्दिर, धर्मशाला, जलाशय आदि जो हो सके सो शुभ विध बनावे जिससे कुछ काल तक नाम बना रहे। बनाने की सामर्थ्य नहीं होवे तो पूजन आदि परमेश्वर की भक्ति करे। यह जो व्यवस्था की गई है, इसमें लोकोपकार से बिना और कुछ प्रयोजन नहीं इसमें जितना हो सके इसकी वृद्धि करे। इसका पालन करे। जो कोई इसको बिगाडेगा उसको अपने मत में जो धर्म है उसकी हानि करने का पाप लगेगा जो इसकी वृद्धि करेगा उसको शुभ फल प्राप्त होवेगा।

ख. रामपूर्वतापनीयोपनिषद्

वेदों ने उपासकों की रुचि-वैचित्र्य का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। भिन्न-भिन्न रुचियों की पूर्ति के लिए भगवान् के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। यहाँ उदाहरण के रूप में वनवासी राम के रूप का वर्णन किया जाता है –

प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा जटाधरः।
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धरः।।
प्रसन्नवदनो जेता धृष्ट्यष्टकविभूषितः।
प्रकृत्या परमैश्वर्यो जगद्योन्यांकितांकभृत्।।

हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः।।
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव ......

(रामपूर्वताप. उप. 3/7–10)

भगवान् का रंग नीलकमल जैसा श्याम है। ऐसा रंग किसी अन्य प्राणी का नहीं होता। अतः भगवान् का रंग ही सबसे पहले देखने वालों की आँखों को आकृष्ट कर अपने में चिपका लेता है। उनका पीताम्बर इस रंग को और निखार देता है। सिर के काले घुँघराले केश इसमें चार चाँद लगा देते हैं। कानों में झिलमिलाते हुए कुण्डल इसकी आरती उतारते हैं। आठों सिद्धियाँ चारों ओर से इसे सँवारने में जुटी रहती हैं। बायीं ओर सीताजी के और दाहिनी ओर लक्ष्मण के स्वर्ण गौर वर्णो से भ्रवान् की श्यामलता और सुभग हो उठती है। उनके मुखपर छायी हुई प्रसन्नता अद्भुत मोहिनी डालती है। ऋग्वेद (1/156/2) ने भगवान् के लिये 'नवीय से' पद का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है कि भगवान् का रूप नित्य नूतन बना रहता है – 'नित्यनूतनाय – अत्यन्तरमणीयायेत्यर्थः। (सायण)

वेद का कथन है कि यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय तथा अवयव और शरीर से रहित है, तथापि रूप–पिपासु उपासकों की रुचि के अनुसार विभिन्न रूप धारण कर लेता है –

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।।

(रामपूर्वताप. उप. 1/7)

अर्थात् उपासना करनेवालों को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने के लिये परब्रह्म के बहुविध रूपों की कल्पना होती है। तदनुसार आगम-शास्त्रों में एक ही श्रीमन्नारायण पंचतत्त्वों के अधिष्ठाता के रूप में पंचविध वर्णित हुए हैं –

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।।

अर्थात् 'आकाश-तत्त्व के अधिष्ठाता विष्णु, अग्नि की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा, वायुतत्त्व के अधिष्ठाता सूर्य, पृथ्वी-तत्त्व के शिव तथा जल-तत्त्व के अधिष्ठाता गणेश हैं।'

हिन्दू मात्र के लिये श्रीराम और श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् ही हैं। युग-युग से वे सम्पूर्ण भारत में साक्षात् भगवान् माने जाते हैं और उसी रूप में पूजे जाते रहे हैं। 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी तथ्य को प्रमाणित करती है –

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।

इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।

(श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद् 1/6)

'जिन नित्यानन्द-स्वरूप, अनन्त चिन्मात्र परमात्मा में योगी लोग अपना मन लगाते और रमण करते हैं, वे भगवान् परब्रह्म 'राम' पद से अभिहित होते हैं।'

कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च।।

नमोवेदादिरूपाय ओंकाराय नमो नमः। रामाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये।।

जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभांगिने। भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे।।

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते।।

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् 4/12–15)

कामरूपधारी तथा मायामय स्वरूप ग्रहण करने वाले श्रीराम को नमस्कार है। वेद के आदिकारण ओंकार स्वरूप श्रीराम को नमस्कार है। रामा - श्रीसीता जी को धारण करने वाले अथवा रमणीय अधरों वाले, आत्मरूप, नयनाभिराम श्रीराम को नमस्कार है। श्रीजानकी जी का शरीर ही जिनका आभूषण है, अथवा जो श्रीजनकनन्दिनी के श्रीविग्रह को स्वयं ही श्रृंगार आदि से विभूषित करते हैं, जो राक्षसों के संहारक तथा कल्याणमय विग्रहवाले हैं तथा जो दशमुख रावण का अन्त करने के लिये यमराज-स्वरूप हैं, उन मंगलमय श्रीरघुवीर को नमस्कार है। हे रामभद्र ! हे महाधनुर्धर ! हे रघुवीर ! हे नृपश्रेष्ठ ! हे दशवदन-विनाशक ! हमारी रक्षा कीजिये तथा हमें ऐसी श्री – ऐश्वर्य-सम्पदा दीजिये, जिसका सम्बन्ध आपसे हो, अर्थात् जो भगवत्प्रीत्यर्थ ही उपयोग में लायी जा सके।

रामोत्तरतापनीयकी दृष्टि में प्रणव – ऊँकारके छः भाग होते हैं और इन भागों में सीताराम के स्वरूप का क्रमशः चिन्तन तथा मनन किया गया है। उपनिषद् के मूल श्लोक इस प्रकार हैं –

आकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।

उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।।

प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।

अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः।।

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदाधारकारिणी।

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।।

सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिका।

प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।।

(1) सुमित्रानन्दन लक्ष्मण प्रणव के 'अ'कार से उत्पन्न हैं। ये जाग्रत् के अभिमानी 'विश्व' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूह में 'संकर्षण' रूप से विराजमान हैं।

(2) 'उ' से उत्पन्न शत्रुघ्न स्वप्न के अभिमानी देवता 'तैजस' नाम से परिचित हैं। चतुर्व्यूह में 'प्रद्युम्न' नाम से विराजमान हैं।

(3) 'म' से प्रादुर्भूत 'भरत' का सम्बन्ध है। ये सुषुप्ति के अभिमानी 'प्राज्ञ' नाम से परिचित हैं। चतुर्व्यूह में 'अनिरुद्ध' नाम से इन्हीं का निर्देश किया जाता है।

(4) प्रणव के चतुर्थ अंश अर्धमात्रा रूप भगवान् राम ही हैं। ये ही तुरीय पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्मानन्द ही इनका एकमात्र विग्रह है। चतुर्व्यूहों में से वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हैं।

(5) श्रीराम के सामीप्यमात्र से जो सम्पूर्ण देहधारियों की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं, ये जगदाधारिणी विदेहनन्दिनी सीता 'नादविन्दु' स्वरूपा हैं। ये ही मूल प्रकृति के नाम से जानी जाती हैं। प्रणव से अभिन्न होने के कारण ब्रह्मवादी जन इन्हें 'प्रकृति' नाम से पुकारते हैं।

यद्यपि परमात्मा एक तथा अखण्ड है, तथापि उसके समग्र स्वरूप का बोध कराने के लिये उसमें चार अंशों या पादों की कल्पना की गयी है। जाग्रत् यानी स्थूल जगत्, स्वप्न अर्थात् सूक्ष्म जगत्, सुषुप्ति अर्थात् प्रलयावस्था में लीन जगत् तथा इन सबसे विशुद्ध ब्रह्म – ये ही परमेश्वर के चार पाद अथवा अवयव हैं। रामतत्त्व के वर्णन में 'रां' यह बीज ही प्रणव है तथा पुरुषोत्तम राम सम्पूर्ण परमेश्वर हैं। इनके चार पाद – लक्ष्मण, शतुघ्न, भरत तथा कौसल्यानन्दन श्रीराम हैं। इन्हीं चारों को मिलाकर सम्पूर्ण राम हैं। जैसे सब कुछ 'ऊँ' है, वैसे ही सब 'रां' है। 'रां' और 'ऊँ' में माहात्म्य तथा महिमा की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। अतएव यह सम्पूर्ण जगत् श्रीराम की ही महत्ता का प्रकाशन कर रहा है। इसी मूलतत्त्व पर ध्यान देना आवश्यक है।

कथा आती है – जब भगवान् शिव विषपान करने लगे तो शिवगणों ने हाहाकार करना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण शिवभक्त दुःखी हो गये। तब भगवान् भूतभावन ने आश्वासन देते हुए कहा – 'भगवान् श्रीराम का नाम सम्पूर्ण मन्त्रों का बीज–मूल है, वह मेरा जीवन है, मेरे सर्वांग में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुका है, अतः अब हालाहल विष हो, प्रलयानल–ज्वाला हो या मृत्युमुख ही क्यों न हो, मुझे इनका किंचित् भय नहीं।

यथा –

श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजं
संजीवनी चेन्पनति प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः।।

अथर्ववेदीय श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् में काशीश्वर श्रीविश्वनाथ द्वारा परात्पर प्रभु श्रीराम के मन्त्र-जप करने एवं वरदान प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है - वैष्णव-कुलभूषण भगवान् शिव ने काशीपुरी में एक सहस्र मन्वन्तरतक जप-होम-पूजनादि के द्वारा सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम की आराधना करते हुए श्रीराममन्त्र-जप का अनुष्ठान किया। अनुष्ठान सम्पन्न होने पर प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् श्रीराम ने भगवान् शिव को दर्शन दिया और कहा – 'परमेश्वर ! आपको जो अभीष्ट हो वह मुझसे माँग लें।' यह सुनकर विश्वेश्वर श्रीशिव ने कहा – 'इस मणिकर्णिका तीर्थ में, मेरे काशी-क्षेत्र में तथा श्रीगंगाजी में या गंगातट पर जो कोई भी प्राणी अपना प्राण त्याग करे तो उसे आप तत्काल मुक्ति प्रदान कर दें।' मुझे यही वर अभीष्ट है।; तब परात्पर प्रभु श्रीराम ने भगवान् शिव को वर देते हुए कहा – 'देवेश्वर ! आपके पावन क्षेत्र में प्राण त्याग करने वाले कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु भी तत्काल मुक्त होकर मेरे धाम में जायँगे। अब मैं इस अविमुक्त क्षेत्र में समस्त लोगों को मुक्ति दिलाने हेतु पाषाण की प्रतिमा आदि (अर्चाविग्रह-स्वरूपों) में सर्वदा निवास करूँगा। मेरे (षडक्षर) तारकमन्त्र द्वारा जो भक्तिसहित मेरी अर्चना-वन्दनादि करेगा, मैं उसे तत्काल समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा।' श्रीभगवान् ने वहाँ यह भी कहा कि मेरे द्वारा प्रदत्त मन्त्रराज को आपके या ब्रह्माजी के मुख से जो षडक्षर मन्त्रराज की दीक्षा लेते हैं, वे जीते-जी मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं और मरणोपरान्त जन्म-मृत्यु के बन्धन से सर्वथा मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं। आप यहाँ जिस किसी भी मरणासन्न प्राणी के दायें कान में मेरे मन्त्र का उपदेश करेंगे, वह निश्चय ही मुक्त हो जायगा। यथा –

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।

(अथर्ववेदीय श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् 8)

तभी से भगवान् शिव अपने प्राणधन भगवान् श्रीराम का निरन्तर नाम-स्मरण करते रहते हैं।

श्रीरामस्तवराज (5) में तो अत्यन्त स्पष्ट वर्णन है कि श्रीरामनाम 'तारक' तथा ब्रह्मसंज्ञक है और ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पापों का विनाशक है यथा –

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।

ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः।।

इसी से गोस्वामी जी ने रामचरितमानस में लिखा है –

'महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।'

(रा.च.मा. 1/18/3)

इस प्रकार राममन्त्र और रामयन्त्र की पूजा से सकल विश्व में चिद्‌रूप से स्थित प्रकाश शक्ति की आराधना सम्पन्न हो जाती है। कितना अपूर्व है यह रामनाम, जिसके उच्चारण मात्र से सम्पूर्ण विश्व से तादात्म्य हो जाता है और मानव-मात्र के कल्याण की भावना अनायास प्रदीप्त हो जाती है। श्रीरामचरित इसीलिये तो मानवमात्र के कल्याण की साधिका मन्त्रमयी मूर्ति है।

राम् ही रामबीज है, राम का अक्षर-विभाग इस प्रकार है – र्, आ, म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीराम का वाचक है तथा उसपर आरूढ जो 'आ'कार है वह ब्रह्मा का वाचक, 'अ'कार विष्णु का वाचक और 'म'कार शिव का वाचक है। इसलिये राम्– यह त्रिमूर्ति का बोधक है अथवा क्रिया–ज्ञान और इच्छा के भेद से त्रिशक्ति का बोधक है। वस्तुतः यह बीज विना किसी हेतु के ही स्वयं प्रकाश होने के कारण सभी का कारण है सर्वात्मक होने के कारण एकमात्र ही सभी का प्रकाशात्मक है। इसीलिये बीज में वट के समान यह सम्पूर्ण जगत्-वृक्ष का अहिकुण्डलिनी-यास से प्रकाशक है। जैसे प्राकृत वट का महान् वृक्ष वट के छोटे से बीज में स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् रामबीज में स्थित है –

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।।

तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च।।

(रामपूर्व. उप. 2/2–3)

इन्हीं मन्त्र-यन्त्रादि से पूज्य सीताराम अनन्त कोटि के ब्रह्माण्ड के जन्म-स्थिति-भंग के उपादान और आधार हैं और वे ही आत्ममाया के द्वारा मानव होकर सम्पूर्ण जगत् का परिपालन करते हैं। 'रामाय नमः' इस मन्त्र में 'नमः' जीववाची है, आत्मावाची 'राम' है, चतुर्थी तदात्मक है, यह मन्त्र रामवाचक है। वाच्य सम्पूर्ण विश्व है और यह मन्त्र सम्पूर्ण विश्व का कल्याणकारी है। इसलिये इसके द्वारा राम की उपासना करनी चाहिये अथवा अनन्तरूप राम तेजःस्वरूप हैं। वैश्वानर बीज 'रा' जब चन्द्रबीज 'म्' से व्याप्त होता है, तब अग्नीषोमात्मक जगत् का वाचक राम् यह मन्त्र बनता है। वे श्रीराम जब शीतल किरणों वाली अर्थात् सौम्य कान्तिमती श्रीसीताजी के साथ संयुक्त होते हैं, तब उनसे अग्नीषोमात्मक (पुरुष और स्त्री रूप) जगत् की उत्पत्ति होती है। श्रीराम सीता के साथ उसी प्रकार शोभा पाते हैं जैसे चन्द्रमा चन्द्रिका के साथ सुशोभित होते हैं।

श्रीरामोत्तरतापिनी उपनिषद् में अविमुक्तोपासना का प्रदर्शन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने बृहस्पतिजी को राम के षडक्षर मन्त्र 'रां रामाय नमः' को तारकमन्त्र के रूप में वर्णित किया है। षडक्षर मन्त्र के विविध रूप भी बतलाये गये हैं तारक मन्त्र के जप का फल, तारकमन्त्र का अर्थ, रामतारक की प्रणवरूपता और अविमुक्त नगरी काशी में मुमूर्षु व्यक्ति को शिव के द्वारा रामतारक मन्त्र का उपदेश आदि बातों को इसमें बतलाया गया है। तारकमन्त्र श्रीराम का साक्षात्कार कराता है और इससे मुक्ति मिलती है। आगे इस रामषडक्षर मन्त्र का विस्तृत वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि प्रसन्नवदन, शान्त, क्रोधरहित, भक्तवत्सल श्रीराम के समान ही यह तारक मन्त्र है और इसके द्वारा आराधना करने से विष्णु के परमपद की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार रामरहस्योपनिषद् में राम के मन्त्रों का विशेष वर्णन है। उपसंहार में कहा गया है – 'राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः' अर्थात् रामन्त्र का अर्थ जाननेवाला जीवनमुक्त है, इसमें संदेह

नहीं। तो सत्यसंकल्प हो 'मैं राम हूँ' ऐसा निरन्तर तात्त्विक दृष्टि से कहता है वह संसारी पुरुष नहीं है, बल्कि वह तो निश्चित राम ही है –

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।

न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः।।

श्रीमद्अध्यात्मरामायण के उमामहेश्वर संवाद के उत्तरकाण्ड के पंचम सर्ग 'रामगीता' का व्याख्यान करता है। इस व्याख्यान में श्रीमहादेव जी बोले – हे पार्वती ! तदन्तर, रघुश्रेष्ठ ....

ततो जगन्मंगलमंगलात्मना

विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम्।

चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो

राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा।।1।।

श्रीमहादेवजी बोले – हे पार्वती ! तदनन्तर, रघुश्रेष्ठ भगवान् राम, संसार के मंगल के लिये धारण किये अपने दिव्यमंगल देह से रामायण रूप अति उत्तमकीर्ति की स्थापना कर पूर्वकाल में जैसा आचरण राजर्षिश्रेष्ठों ने किया है, वैसा ही स्वयं भी करने लगे ।

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना

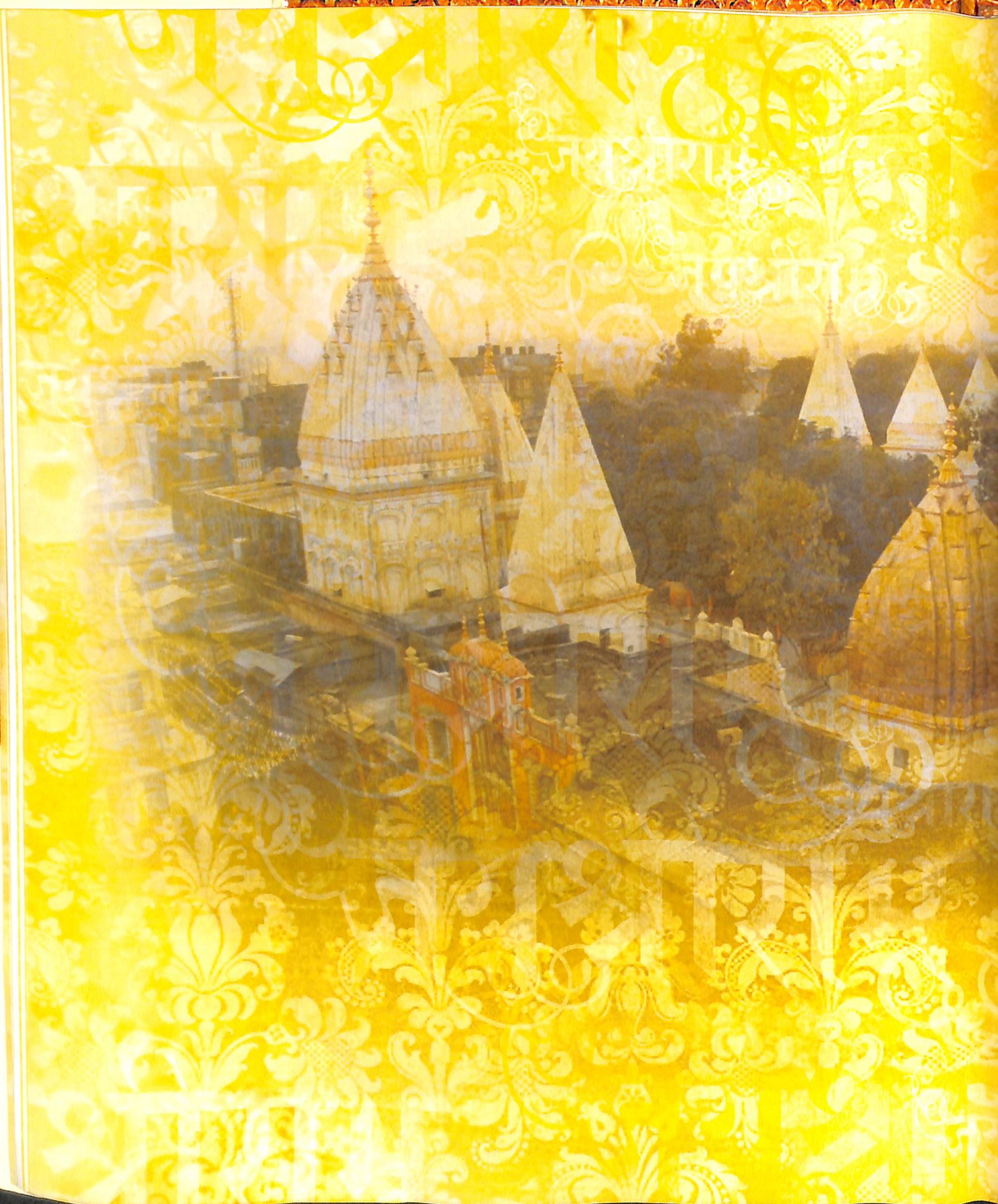
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः।

राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो

द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाहराघवः।।2।।

उदारबुद्धि लक्ष्मण जी के पूछने पर वे प्राचीन उत्तम कथाएँ सुनाया करते थे। इसी प्रसंग में श्रीरघुनाथ जी ने, राजा नृग को प्रमादवश ब्राह्मण के शाप से तिर्यग्योनि प्राप्त करने का वृत्तान्त भी सुनाया।







3

श्री रघुनाथजी मंदिर
निर्माण संबंधी दस्तावेज़

श्री रघुनाथजी के मंदिर-निर्माण संबंधी दस्तावेज़

भारतवर्ष को प्रगति, उन्नति एवं सद्भावनापूर्ण वातावरण प्रदान करने में जिन राजघरानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है उनमें डॉक्टर कर्ण सिंह का राजघराना सरेफहरिस्त है। डॉ. कर्ण सिंह के पूर्वजों ने भारतवर्ष के मुस्लिम-बहुलय क्षेत्र पर राज किया है। जहाँ धार्मिक सौहार्द बनाए रखना एक जटिल समस्या थी। परन्तु इस राजघराने ने अपनी प्रजा के हृदय पर इस प्रकार शासन किया कि स्वतंत्रता के पश्चात् भी इस घराने का महत्व कम न हो सका। डॉ. कर्ण सिंह स्वयं भी इन्हीं परम्पराओं के आरोही हैं, यही कारण है कि भारतीय समाज एवं राजनीति में आज भी उनके योगदान एवं भूमिका को अनुकरणीय स्थान प्राप्त है।

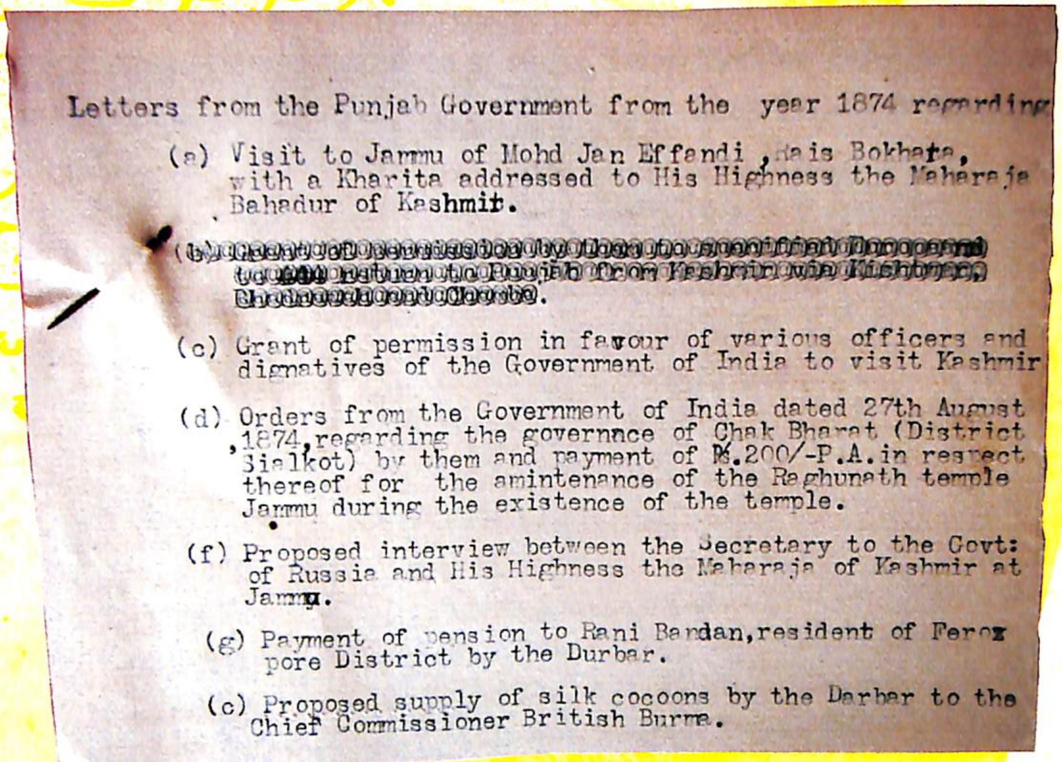
श्री रघुनाथ जी मंदिर के निर्माणकाल से जुड़े फ़ारसी के दस्तावेज़ों में प्रचुर सामग्री है जो इस मंदिर की मरम्मत, दानकर्ता, दान का उपयोग, पुजारी, बाबा तथा उनके चेले के चयन एवं कार्य शैली पर प्रकाश डालती है। मंदिर के दानकर्ताओं में हिन्दू ज़मींदारों, अंग्रेज़ों का योगदान भी है। इसी प्रकार मंदिर की मरम्मत करने वाले, फूल लाने वाले, चूनाकारी करने वाले मज़दूर, लुहार, बढ़ई, तेली आदि अधिकतर मुसलमान हैं जिनसे उस समय के धार्मिक सौहार्दपूर्ण वातावरण का आभास होता है।

वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए भी यह पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है जिसमें 19वीं शताब्दी के तरह-तरह के आँकड़े मिलते हैं जैसे मज़दूरों, कारीगरों, दर्ज़ी, लुहार, तेली आदि की मज़दूरी, फूल, नारियल तथा इसी तरह की मंदिर में पूजा अर्चना में प्रयोग होने वाली वस्तुओं का मूल्य भी इसमें अंकित है। इस पुस्तक में जिस भाषा शैली का प्रयोग हुआ है वह भी अनोखी है। फ़ारसी, उर्दू तथा जम्मू राज की अपनी भाषाओं के प्रभाव से सम्मिलित यह शैली, भाषा के एक नए आकार की जन्मदाता है। रक़म लिखने का पुराना तरीक़ा, बही खातों में प्रयोग होने वली हुन्डी का भी बयान किया गया है। इसी प्रकार महीनों के नाम भी कहीं ईरानी और कहीं हिन्दी दिए गए हैं जैसे उर्दी ईरानी महीना है तो माघ, पूस हिन्दी महीने हैं।

इन दस्तावेज़ों में जम्मू क्षेत्र के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक स्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है जिससे उस समय के प्रचलित क़स्बों, गाँवों, परगना, मौज़ा आदि के नाम जिनमें से कुछ इस समय उसी तरह मौजूद हैं तो कुछ स्थानों के नाम बदल गए हैं तो कुछ की आबादी समाप्त हो चुकी है। उस समय के ज़मींदारों, हाकिमों और किसानों के नाम भी इस पुस्तक में अंकित हैं। ख़ासतौर से उस ज़माने में प्रचलित दस्तख़तों की जगह ज़मींदारों की अपनी मोहरा (Seal) का इस्तेमाल और मोहर न होने पर दस्तख़त के साथ ब क़लम खुद (अपनी क़लम से) लिखने के इस्तेमाल का पता चलता है।

इन दस्तावेज़ों को पढ़ना और फिर उसका अनुवाद करना एक अत्यन्त कठिन एवं जटिल कार्य था, क्योंकि इसमें अंग्रेज़ों द्वारा लिखे गए पत्र भी हैं, ज़मींदारों द्वारा की जाने वाली कार्य व्यवस्था का विवरण भी है, मंदिर का पूरा लेखा-जोखा भी है। वसीयतें, दानियों के दस्तावेज़, मंदिर में पूजा-अर्चना करने और कराने वालों के काम काज का तरीक़ा, तीर्थयात्रा पर दूर-दूर से आने वाले यात्रियों की समस्याओं पर भी लिखा गया है। इन सबसे अलग फारसी ख़ते शिकस्ता में शब्दों व जुमलों का पढ़ना जिन पर न नुक़्ते होते हैं और न मात्राएँ इस वक़्त इनका पढ़ना बहुत मुश्किल काम है। ख़ेत सियाह (रक़म लिखने का तरीक़ा) के पढ़ने वाले आज कल तक़रीबन न के बराबर हैं, इसी प्रकार भूमि के माप का बीघों तथा बिस्वों में लिखने का पुराना अंदाज पढ़ने योग्य नहीं रहा है। इसीलिए फ़ारसी ख़ते

शिकस्ता, ख़ते सियाह और भूमि के आकार के लिखने के तरीक़ों को हिन्दी अनुवाद करके उस पांडुलिपि के पृष्ठ के सामने लिखा गया है। ताकि इस दस्तावेज़ी किताब (अभिलेखपूर्ण पुस्तक) से सभी फ़ायदा उठा सकें। इसमें होने वाली सभी गल़तियों के लिए माफ़ी चाहते हुए उनकी निशानदेही करने वालों के हम आभारी होंगे।



Letters from the Punjab Government from the year 1874 regarding

(a) Visit to Jammu of Mohd Jan Effandi , Rais Bokhara, with a Kharita addressed to His Highness the Maharaja Bahadur of Kashmir.

(b) [illegible]

(c) Grant of permission in favour of various officers and dignatives of the Government of India to visit Kashmir

(d) Orders from the Government of India dated 27th August ,1874,regarding the governnce of Chak Bharat (District Sialkot) by them and payment of Rs.200/-P.A.in respect thereof for the amintenance of the Raghunath temple Jammu during the existence of the temple.

(f) Proposed interview between the Secretary to the Govt: of Russia and His Highness the Maharaja of Kashmir at Jammu.

(g) Payment of pension to Rani Bandan,resident of Feroz pore District by the Durbar.

(c) Proposed supply of silk cocoons by the Darbar to the Chief Commissioner British Burma.

पंजाब सरकार के 1874 से लिखे गए पत्रों के बारे में जो तुमाअल्लिक़ (regarding) थे।

(a) बुख़ारा के रईस मोहम्मद जान आफ़न्दी का जम्मू का सफ़र जो अपने साथ एक ख़त की एक थैली (लिफ़ाफ़ा) लाए थे जो कश्मीर के इज़्ज़त मा आब (His Highness) जनाब महाराजा बहादुर को मुख़ातिब किया गया था।

(b) .... कश्मीर से किश्तवाड़ के रास्ते पंजाब को वापस लौट कर जाना।

(c) भारत के कुछ बड़े ओहदों वाले (dignataries) और अफ़सरों को कश्मीर जाने की इजाज़त को मंज़ूरी।

(d) भारतीय हुकूमत के आर्डर दिनांक 27 अगस्त, 1874 कि chak Bharat (District Siyalkot) पर उनकी हुकूमत, उनका इन्तेज़ाम करना और साल का 200 रु. उनको दिया जाना ताकि जम्मू के रघुनाथ मंदिर जब तक मौजूद रहे उसकी देखभाल, हिफ़ाज़त और मरम्मत (repair) की जा सके।

(f) रूसी सरकार के सचिव और इज़्ज़त माआब (His Highness) जम्मू के महाराजा के बीच बातचीत का सुझाव।

(g) रानी बन्दन जो जनपद फ़ीरोज़पुर की रहने वाली थी। दरबार से उनकी पेन्शन का दिया जाना।

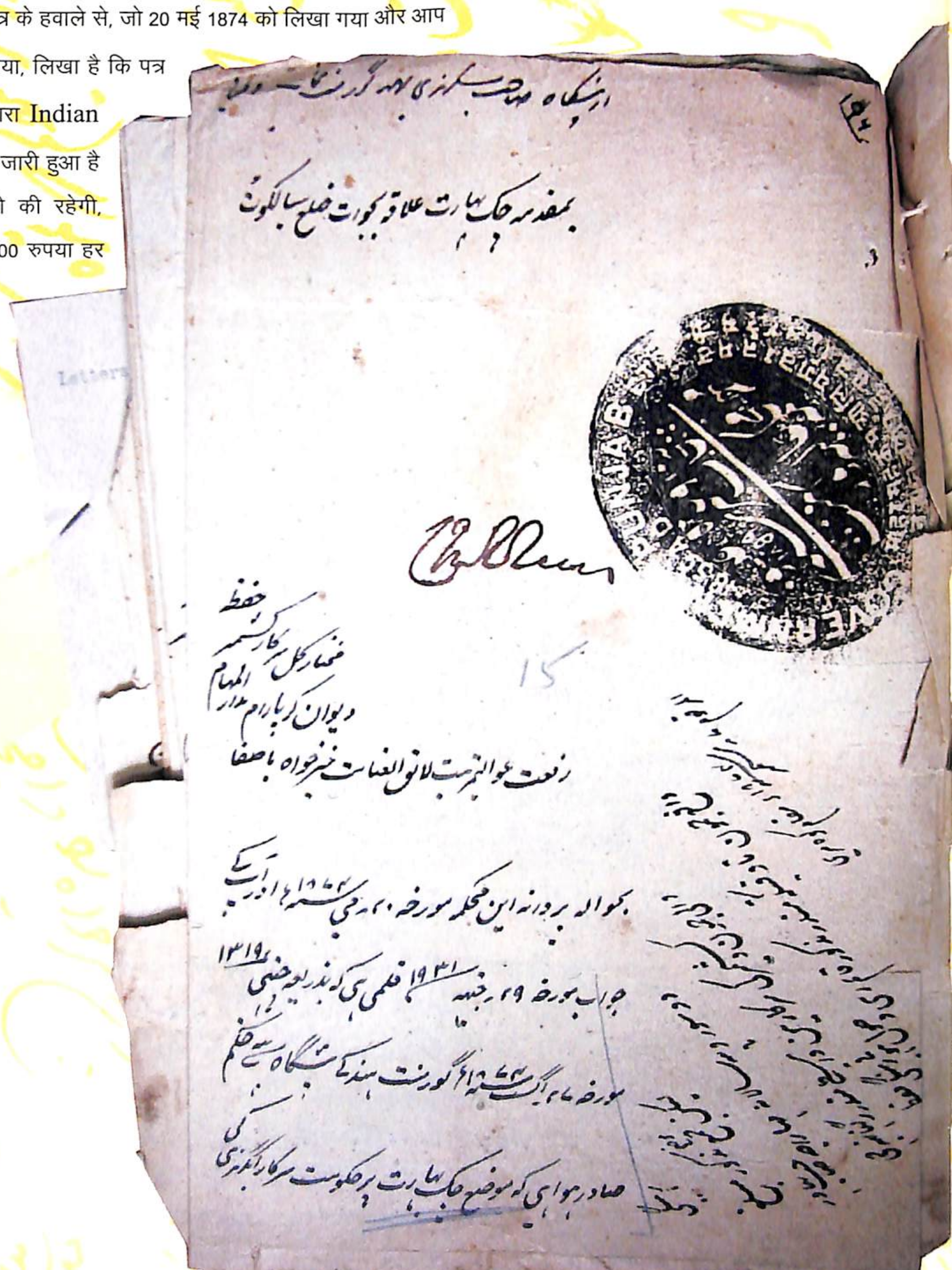
(h) हुकूमत की ओर से रेशम के कीड़ों को बर्मा के मुख्य आयुक्त को भेजने के बारे में।

साहेब Secretary बहादुर Govt Punjab वग़ैरा (etc) नं. 96 के दरबार से चक भारत इलाक़ा बिज्वात District Siyalcot से मुक़द्दमा।

दीवान किरपाराम अल्लाह जिसको हमेशा रखे

जो बहुत इज़्ज़त वाला बड़ा मरतबा रखने वाला कश्मीर की सरकार अल्लाह जिसकी हिफ़ाज़त करे, का पूरी तरह मालिक

इस मोहकमे से लिखे गए पत्र के हवाले से, जो 20 मई 1874 को लिखा गया और आप का जवाब जो 29 Jath 1931 में लिखा गया, लिखा है कि पत्र नं. 1319 दिनांक 27 अगस्त 1874 के द्वारा Indian Government की तरफ़ से यह order जारी हुआ है कि गाँव चक भारत पर हुकूमत अंग्रेज़ी की रहेगी, लेकिन इस गाँव से जमा की गई रक़म 200 रुपया हर साल जम्मू और कश्मीर के हर साल महाराजा साहब बहादुर की सरकार में रघुनाथ जी मंदिर के लिए जो जम्मू में है जब तक यह मंदिर क़ायम रहेगा वसूल होते रहेंगे।



(हस्ताक्षर)

written on :

dated 7 September 1874A.D.

at कोहमरी (मरी की पहाड़ियाँ)

इजलास साहब Secretary Bahadur Govt of Punjab वग़ैरह

बड़े मरतबे वाले, दूसरों पर मेहरबानी करने वाले, भला चाहने वाले

दिल के बहुत साफ़, इज़्ज़त वाले दीवान कृपा राम जो जम्मू कश्मीर सरकार के पूर्ण मालिक हैं भगवान उनकी हिफ़ाज़त करे। थोड़ा समय हुआ जब आप माधौपुर आए थे तो वहाँ गाँ चक भारत के बारे में बात चीत हुई थी जो कि सरकार अंग्रेज़ की हद के अंदर बसा हुआ है, लेकिन जिसका पैसा महाराजा साहब बहादुर जम्मू और कश्मीर लेते हैं उस समय आप ने ज़िक्र किया था कि महाराजा साहब ने उस गाँव में हुकूमत के इख़्तियारात को काम में लाने के बारे में कोई दावा नहीं किया लेकिन उनका दावा (गाँव) डीह के सिर्फ माल और पैसे जिसके बारे में बताया जा चुका है वह सिर्फ मंदिर रघुनाथ जी जो जम्मू में है, के लिए है जो संवत् 1907 में सर हेनरी लॉरेन्स साहेब बहादुर ने इस मतलब के लिए दे दिया था। Office के Papers देखने से मालूम हुआ कि जो ऊपर कहा गया है उसको दिया गया या नहीं उसके बारे में कोई पता नहीं लेकिन Petition मुक़द्दमा जो बहुत दिनों से File (दायर) है उसके Settlement के लिए नवाब लेफ़्टिनेन्ट गर्वनर बहादुर बहुत ख़ुशी से Govt आलिया के पास इस बात की सिफ़ारिश करने को तैयार हैं कि जिस डीह (गाँव) के बारे में ऊपर बताया जा चुका है उसका पैसा सन् 1907 से उस मंदिर जिसका ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है, की देखरेख के लिए दिया जाना समझा जाए और उसी तरह जब तक मंदिर मौजूद है दिया जाता रहे। इसके साथ ही यह बात भी अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि ऊपर जिस गाँव के बारे में बताया गया है वह अंग्रेजी सरकार के अधीन है। जम्मू कश्मीर महाराजा साहब बहादुर की हुकूमत में नहीं है। इससे पहले कि इस बारे में Govt आलिया की मुक़र्रर हद लिखी जाएं यह बहुत ख़ुशी की बात होगी। नवाब मुफ़ख़्ख़रुल्लाह बहादुर के लिए नवाब जिसकी तारीफ की गई है को यह यक़ीन दिलाया जाए कि उस गाँव का इन्तेज़ाम महाराजा बहादुर की मर्ज़ी के मुताबिक़ जैसा वह चाहते हैं वैसा ही है।

हस्ताक्षर ....

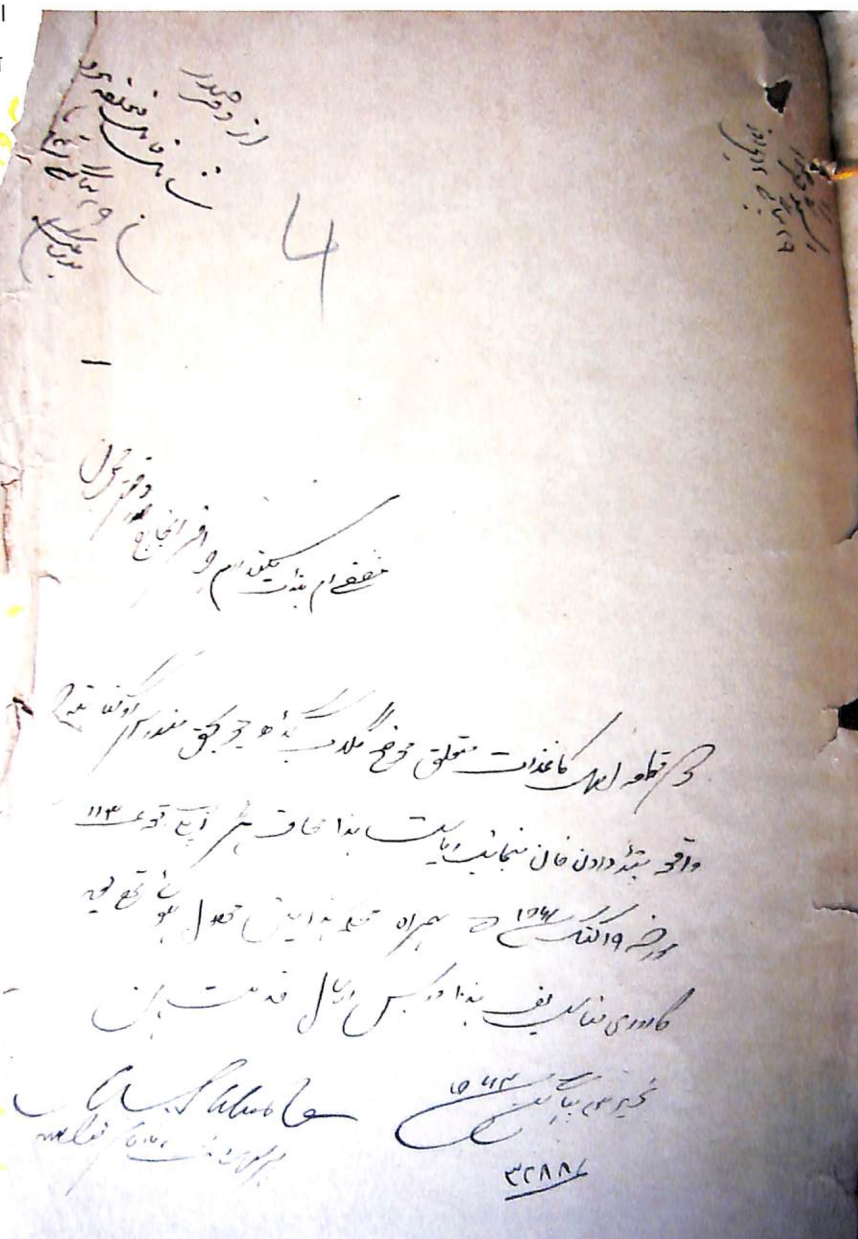
written dated 20 May 1874 A.D.

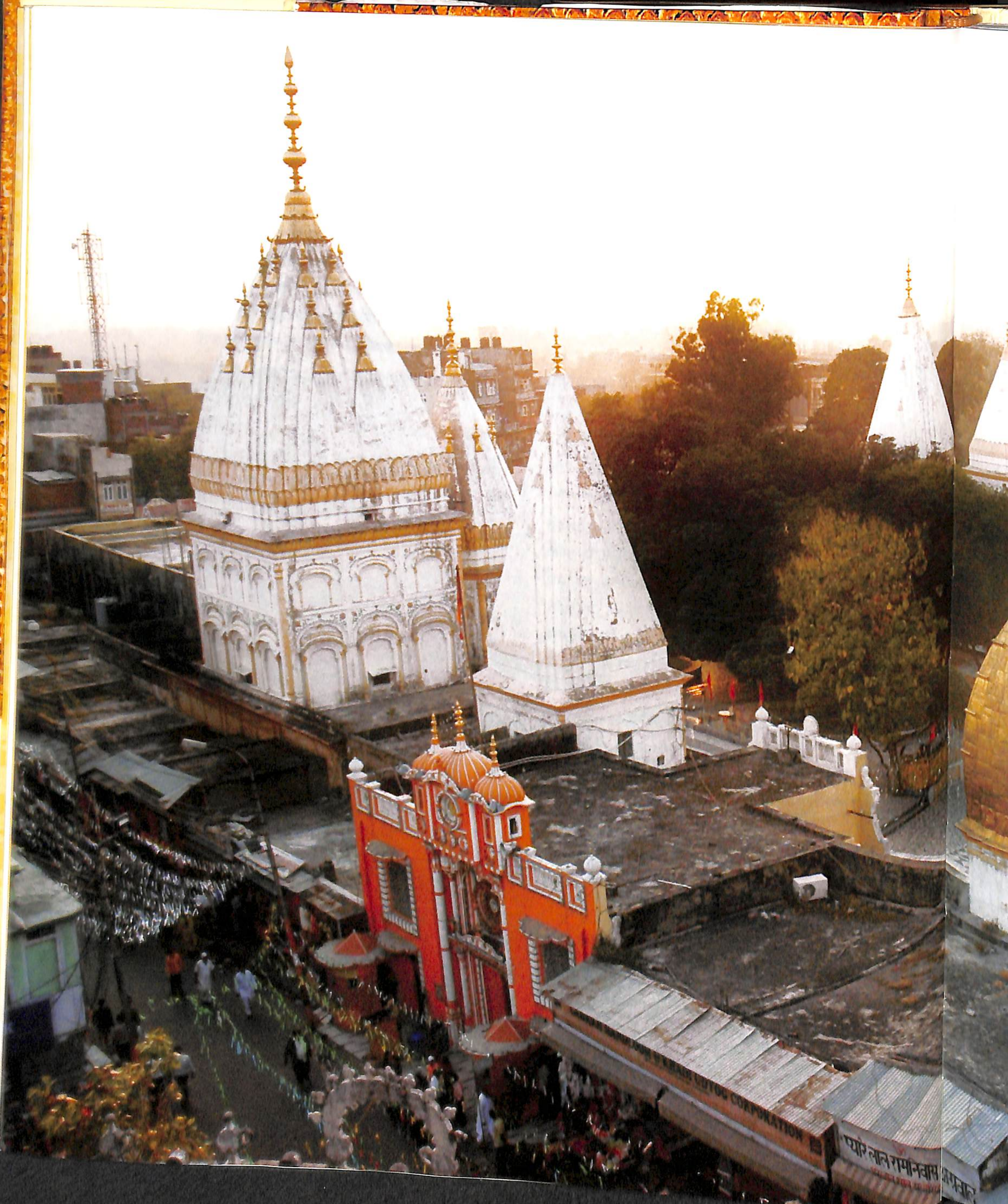
at Kah mAri (कोह मरी)

मोहर महकमा–ए–आलिया

Govt Punjab (etc) वगैरह

1859 A.D.




CORPORATION
प्यारे लाल रामनिवास

4

मूर्ति शिल्प आस्था और परंम्परा



मूर्ति शिल्प : आस्था और परंपरा

भूमिका

वर्तमान श्रीरघुनाथ मंदिर वस्तुतः अनेकानेक देवी देवतओं की उपासना का एक जीवंत केन्द्र बन गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न देवी- देवताओं की मूर्तियों की स्थापना और प्राण प्रतिष्ठा की गयी है। मूर्तियों के निकट उनकी स्तुतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक मूर्ति के निकट विशिष्ट पूजा और उपासना का अवसर उपस्थित करने के लिए इन स्तुतियों का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः देवत्व की दिशा में मनुष्य की निरंतर साधना के क्रम में स्तुतियाँ उपासना का काम करती हैं। अतः इस अध्याय में विभिन्न देवताओं के साथ जुड़ी और श्रीरघुनाथ मन्दिर में उत्कीर्ण स्तुतियों का संकलन प्रस्तुत है।

गर्भगृह : श्रीरघुनाथ जी

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।।
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो।।

(18(1–2), बालकाण्ड, मानस)

मैं श्रीरघुनाथजी के नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूप से बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदों का प्राण है, निर्गुण, उपमारहित और गुणों का भण्डार है।

गर्भगृह : सीताराम

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी।।
सीय रामय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(7(1–2), बालकाण्ड, मानस)

चौरासी लाख योनियों में चार प्रकार के (स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज) जीवजल, पृथ्वी और आकाश में रहते हैं, उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत् को श्रीसीताराममय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

गर्भगृह : श्रीरघुनाथ जी

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्।।

(31, रामरक्षास्तोत्रम्)

जिनकी दायीं ओर लक्ष्मण जी, बायीं ओर जानकी जी और सामने हनुमान् जी विराजमान हैं उन श्रीरघुनाथ जी की मैं वन्दना करता हूँ।





गर्भगृह

श्रीरघुनाथ जी

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।।
जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

196 (4, 5, 6) बालकाण्ड, मानस

हे राजन् ! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा। ये जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि हैं, जिस (आनन्दसिन्धु) के एक कण से तीनों लोक सुखी होते हैं, उन (आपके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुख का भवन और सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देनेवाला है—

रामनाम सबकोई कहै, दशरथ कहै न कोई।
जो कोई दशरथ कहै, तो कोटि जन्म फल होई।।

(सुशील मिश्र)



सीता-राम

राममन्त्रस्य रां बीजे सीताऽऽकारात्मिकोच्यते।
भभीत्यार्तजीवनां शरण्यैका तदाप्तये।।23।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, 111)

श्रीराममंत्र रे 'राम' बीच में किशोरी जी 'आ' कार रूप में विद्यमान हैं, संसार भय से व्याकुल प्राणियों को भगवत्प्राप्ति कराने के लिए एकमात्र वे ही शरणदायिका हैं।

सीय राममय सब जगजानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(तुलसीदास)

राम

अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।।

(वाल्मीकि, 6/1/14)

रघुकुलचन्द ! आप ब्रह्म हैं। आप सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में सत्यरूप से विद्यमान हैं। आप ही लोकों के परमधर्म हैं। आप ही चार भुजाधारी विश्वक्सेन विष्णु हैं।

'रा' शब्दो विश्ववचनो 'म' श्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः।।8।।

ब्रह्मवैवर्तपुराण, 111/8

'रा' शब्द सम्पूर्ण का वाचक है और 'म' ईश्वर का वाचक। सबका ईश्वर होने के कारण परमात्मा को 'राम' कहा जाता है।

सीता

एषा सीता हरेर्माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सीता साक्षात् जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जदात्मिका।।40।।

अध्यात्म रामायण, युद्धकाण्ड, चतुर्थ पदी

विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करनेवाली साक्षात् आदिशक्ति

महामाया सीतारूप में प्रकट हुईं। यही सीता साक्षात् जगत का कारक है। यह चेतना–शक्ति तथाजगत् रूप है।

'मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते'

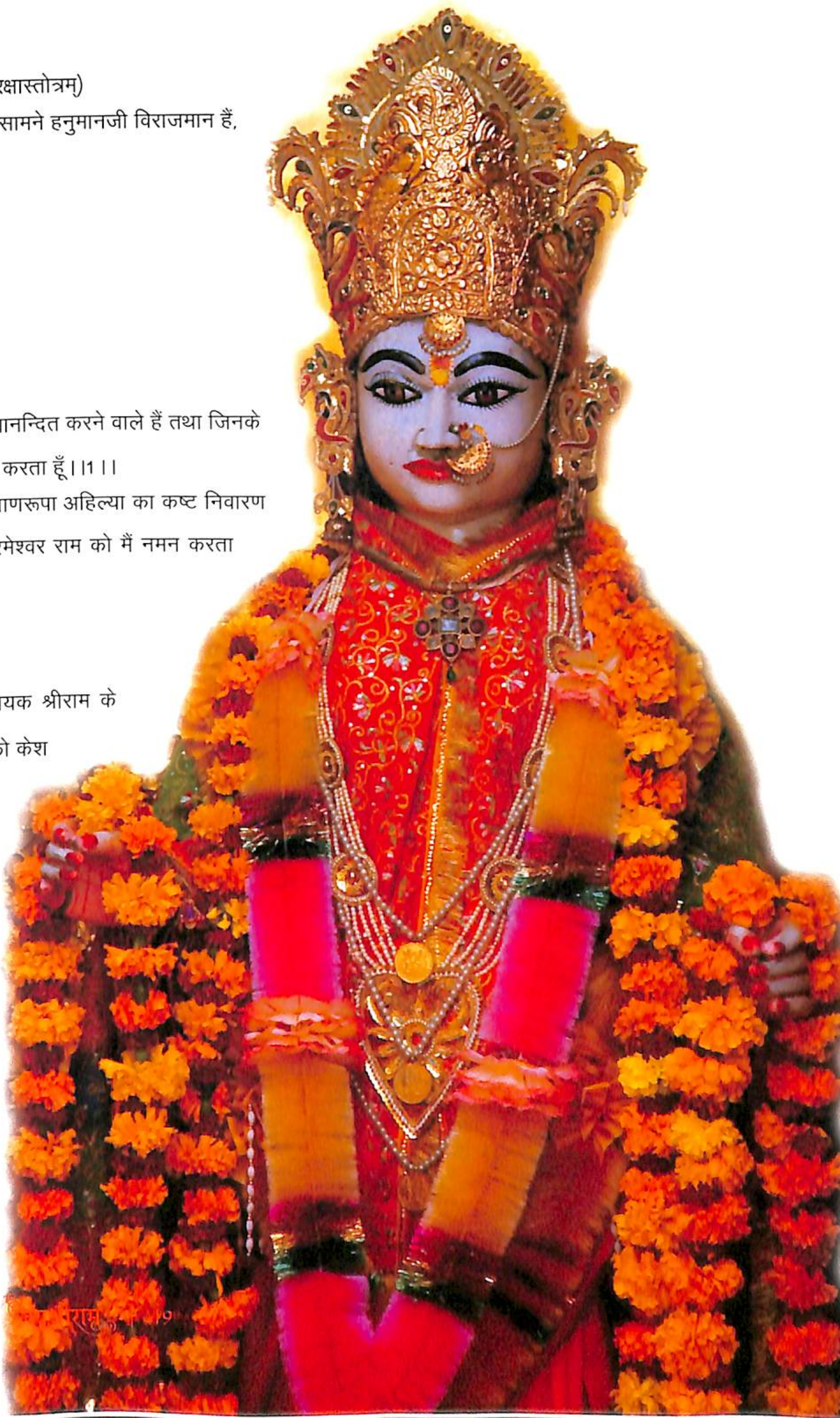
–सीतोपनिषद्

सांख्यशास्त्र के अनुसार मूल प्रकृति होने से सीता को प्रकृति भी कहा गया है।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामेच जनकात्मजा।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्।।31।।

(संदर्भ : रामरक्षास्तोत्रम्)

जिनकी दायीं ओर लक्ष्मणजी, बायीं ओर जानकीजी और सामने हनुमानजी विराजमान हैं, उन रघुनाथ जी की मैं वन्दना करता हूँ।



(रामाष्टकम्)

कृतार्तदेववन्दनं दिनेशवंशनन्दनम्।
सुशोभिभालचन्दनं नमामि रामनीश्वरम्।।1।।
मुनीन्द्रयज्ञकारकं शिलावियत्तिहारकम्।
महाधनुर्विदारकं नमामि रामनीश्वरम्।।2।।

आर्त देवताओं ने जिनकी वन्दना की है, जो सूर्यवंश को आनन्दित करने वाले हैं तथा जिनके ललाट पर चन्दन सुशोभित है, उन परमेश्वर राम को मैं नमस्कार करता हूँ।।1।।

जो मुनिराज विश्वामित्र का यज्ञ सम्पन्न कराने वाले, पाषाणरूपा अहिल्या का कष्ट निवारण करनेवाले तथा श्रीशंकर का महान् धनुष तोड़नेवाले हैं, उन परमेश्वर राम को मैं नमन करता हूँ।।2।।

श्रीराम

रामवण को समझाते हुए मन्दोदरी ने निखिल-भुवन नायक श्रीराम के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए सूर्य को श्रीराम के नेत्र तथा बादलों को केश कहा है –

नयन दिवाकर कच घनमाला।।

– श्रीरामचरितमानस

जयद्वारपाल एवं विजयद्वारपाल जी

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु बिजय जान सब कोऊ।।

(121(4), बालकाण्ड, मानस)

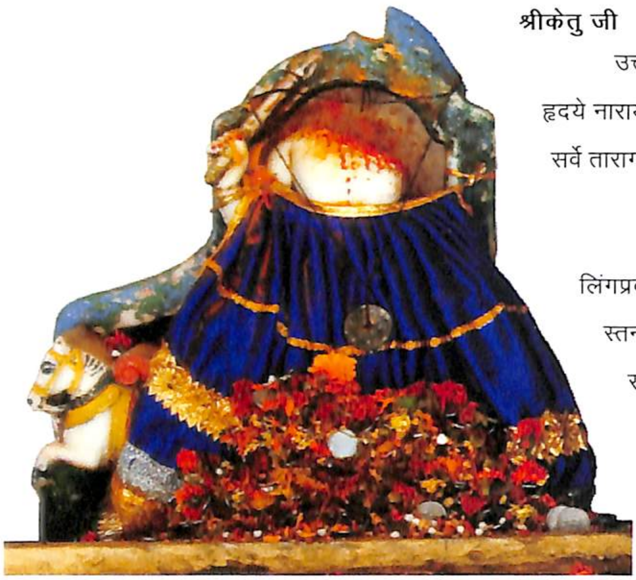
श्रीहरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं। उन दोनों भाइयों ने ब्राह्मण के शाप से असुरों का तामसी शरीर पाया।

श्रीराहु जी



तं दृष्ट्वा वदनान्मुक्तं चन्द्रं राहुमुखादिव।
ञअवीत् सुरसा देवी स्वेन रूपेण वानरम्।।
अर्थसिद्ध्यै हरिश्रेष्ठ गच्छ सौम्य यथासुखम्।
समानय च वैदहीं राघवेण महात्मना।।
(170–71/1, सुन्दरकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

राहु के मुख से छूटे हुए चन्द्रमा की भाँति अपने मुख से मुक्त हुए हनुमानजी को देखकर सुरसा देवी ने अपने असली रूप में प्रकट होकर उन वानरवीर से कहा – "कपिश्रेष्ठ ! तुम भगवान् श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिये सुखपूर्वक जाओ। सौम्य ! विदेहनन्दिनी सीता को महात्मा श्रीराम से शीघ्र मिलाओ।।



श्रीकेतु जी

उत्तराह्नावगस्तिरधराद्दौ यमौ मुखेषु चाङारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रोनाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमक्षु सर्वे तारागणाः।।6।।

(पंचम स्कन्ध/अ. 23/ श्रीमद्गागवत)

इसकी ऊपर की थूथनी में अगस्त्य, नीचे की ठोढी में नक्षत्ररूप यम, मुखों में मंगल, लिंगप्रदेश में शनि, ककुद् में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनीकुमार, प्राण और अपान में बुध, गले में राहु, समस्त अंगों में कुतु और रोमों में सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं।

धूम्राद्विबाहवः सर्वेगदिनो विकृताननाः।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः।।
(94/8, मत्स्यपुराण)

सभी केतु द्विबाहु हैं। इनके शरीर आदि धूम्र वर्ग के हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथों में गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और गीध पर सवार हैं।



श्रीशनिदेव जी

ततः उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः।।

(16/पंचम स्कन्ध/अध्याय 23/श्रीमद्भागवत)

बृहस्पति से हो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखायी देते हैं। ये तीस-तीस महीने तक एक-एक राशि में रहते हैं। अतः इन्हें सब राशियों को पार करने में तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्रायः सभी के लिये अशान्तिकारक हैं।






श्री पूर्व दिशा एवं पश्चिम दिशा जी; श्री उत्तर एवं श्री दक्षिण दिशा जी

तत शालां सुविस्तीर्णा कारयामास वासभः।
प्राक्पश्चिमं दक्षिणोहक् शोभनं मन्दिरद्वयम्।।
जानक्या सहितो रामो लक्ष्मणेन समन्वितः।
तत्र ते देवसदृशा ह्यवसन् भवनोत्तमे।।

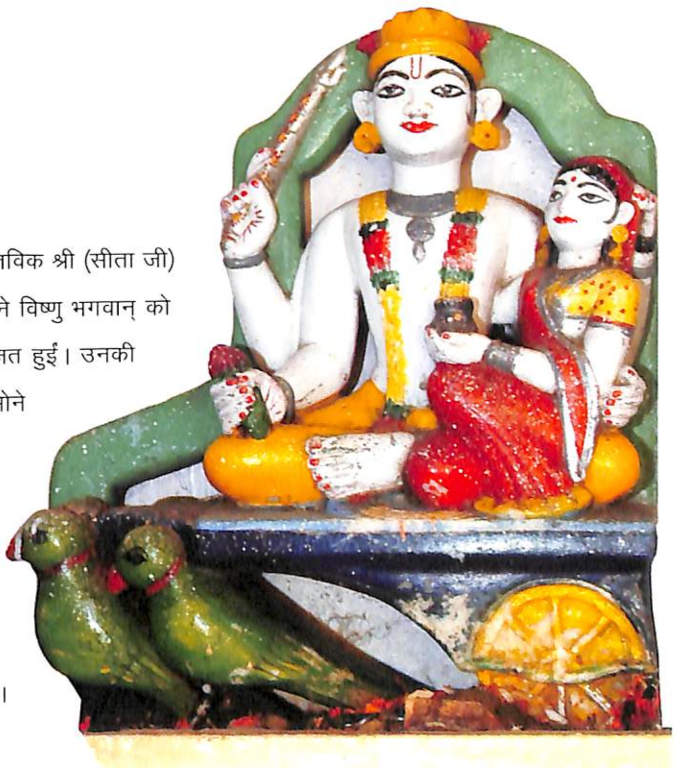
(90–91 / 6, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्मरामायण)

श्रीमान् मुनिवर वाल्मीकि जी ने भगवान् राम के रहने के लिये एक सुविशाल शाला बनवायी, उसमें एक पूर्व पश्चिम और दूसरा उत्तर-दक्षिण ऐसे दो सुन्दर घर बनाये गये। उस भवन में जानकी के सहित श्रीराम और लक्ष्मण देवताओं के समान रहने लगे।

श्री अग्निदेव

छंद – धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।

(108(11–12), लंकाकाण्ड, मानस)



तब अग्नि ने शरीर धारक करके वेदों में और जगत् में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीता जी) का हाथ पकड़ उन्हें श्रीरामजी को वैसे ही समर्पित किया कैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थी। वे सीताजी श्रीरामचन्द्र जी के वाम भाग में विराजित हुई। उनकी उत्तम शोभा अत्यन्त ही सुन्दर है। मानो नये खिले हुए नीले कमल के पास सोने की कली सुशोभित हो।

श्रीअग्निदेव

दोहा – तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ।।189।।

(बालकाण्ड, मानस)

तदनन्तर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्द में मग्न हो गये, उनके हृदय में हर्ष समाता न था।

रामहृदयम्

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे।।1।।

जिन चिन्मय अविनाशी प्रभु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी तल पर सूर्य वंश में माया–मानव रूप से अवतार लिया और जो राक्षसों के समूह को मारकर तथा संसार में अपनी पाप विनाशिनी अविचल कीर्ति स्थापित कर पुनः अपने आद्य ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गये ,उन श्री जानकीनाथ का मैं भजन करता हूँ।।1।।

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्।
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि।।2।।

जो विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि के एकमात्र कारण हैं, माया के आश्रय होकर भी मायातीत हैं, अचिन्त्य स्वरूप हैं, आनन्दघन हैं, उपाधिकृत दोषों से रहित हैं तथा स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं ,उन तत्त्ववेत्ता श्री सीता पति को मैं नमस्कार करता हूँ।।2।।

पठन्ति ये नित्यमनन्यचेतसः शृण्वन्ति चाध्यात्मिकसंज्ञितं शुभम्।
रामायणं सर्वपुराणसंम्मतं निर्धूतमामा हरिमेव यान्ति ते।।3।।

जो लोग इस सव-पुराण-सम्मत पवित्र अध्यात्म-रामायण का एकाग्र-चित्त से नित्य पाठ करते हैं और जो इसे सुनते हैं वे पापरहित होकर श्रीहरि को ही प्राप्त करते हैं।।3।।

अध्यात्मरामायणमेव नित्यं पठेद्यदीच्छेद्भवबन्धमुक्तिम्।
गवां सहस्रायुतकोटिदानात् फलं लभेद्यः शृणुयात्स नित्यम्।।4।।

यदि कोई संसार-बन्धन से मुक्त होना चाहता हो तो वह अध्यात्म रामायण का ही नित्य पाठ करे। जो कोई मनुष्य इसका नित्य श्रवण करता है वह लाखों करोड़ गोदान का फल प्राप्त करता है।।4।।

पुरारिगिरिसंभूता श्रीरामार्णवसंगता।
अध्यात्मरामगेंयं पुनाति भुवनत्रयम्।।5।।

श्री शंकररूप पर्वत से निकली हुई रामरूप समुद्र में मिलनेवाली यह अध्यात्मरामायण रूपिणी गंगा त्रिलोक को पवित्र कर रही है।।5।।

कैलासाग्रे कदाचिद्रविशतविमले मन्दिरे रत्नपीठे
संविष्टं ध्याननिष्ठं त्रिनयनमभयं सेवितं सिद्धसंघैः।
देवी वामांगसंस्था गिरिवरतनया पार्वती भक्तिनम्रा
प्राहेदं देवमीशं सकलमलहरं वाक्यमानन्दकन्दम्।।6।।

एक समय कैलास पर्वत के शिखर पर सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान शुभ्र भवन में रत्नसिंहासन पर ध्यानावस्थित बैठे हुए, सिद्ध-समूहसेवित, नित्यनिर्भय, सर्वपापहारी आनन्दकन्द देवदेव भगवान् त्रिनयन से उनके वामांग में विराजमान श्रीगिरिराजकुमारी पार्वती ने भक्तिभाव से नम्रतापूर्वक ये वाक्य कहे।।6।।

पार्वत्युवाच

नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास सर्वात्मदृक् त्वं परमेश्वरोऽसि।
पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य सनातनं त्वं च सनातनोऽसि।।7।।

श्री पार्वती जी बोलीं – हे देव ! हे जगन्निवास ! आपको नमस्कार है; आप सबके अन्तःकरणों के साक्षी और परमेश्वर हैं। मैं आपसे श्री पुरुषोत्तम भगवान् का सनातन तत्त्व पूछना चाहती हूँ, क्योंकि आप भी सनातन हैं।।7।।

गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं वदन्ति भक्तेषु महानुभावाः।

तदप्यहोऽहं तव देव भक्ता प्रियोऽसि मे त्वं वद यत्तु पृष्टम्।।8।।

महानुभाव लोग जो अत्यन्त गोपनीय विषय होता है तथा अन्य किसी से कहने योग्य नहीं होता उसे भी अपने भक्त जनों से कह देते हैं। हे देव ! मैं भी आपकी भक्त हूँ, मुझे आप अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये मैंने जो कुछ पूछा है, वह वर्णन कीजिये।।8।।

ज्ञानं सविज्ञानमथानुभक्ति – वैराग्ययुक्तं च मितं विभास्वत्।

जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्ति येन।।9।।

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संसार-समुद्र से पार हो जाते हैं उस भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण प्रकाशमय आत्मज्ञान का वर्णन आप विज्ञानसहित इस प्रकार स्वल्प शब्दों में कीजिये जिससे मैं स्त्री होने पर भी आपके वचनों को (सहज ही) समझ सकूँ।।9।।

पृच्छामि चान्यच्च परं रहस्यं तदेव चाग्रे वद वारिजाक्ष।

श्रीरामचन्द्रेऽखिललोकसारे भक्तिर्दृढा नौर्भवति प्रसिद्धा।।10।।

हे कमल नयन ! मैं एक परम गुह्य रहस्य आपसे और पूछती हूँ, कृपया आप पहले उसे ही वर्णन करें। यह तो प्रसिद्ध ही है कि अखिल-लोक-सार श्री रामचन्द्र जी की विशुद्ध भक्ति संसारसागर को तरने के लिये सुदृढ़ नौका है।।10।।

भक्तिः प्रसिद्धा भवमोक्षणाय नान्यततः साधनमस्ति किंचित्।

तथापि हृत्संशयबन्धनं मे विभेत्तुमर्हस्यमलोक्तिभिस्त्वम्।।11।।

संसार से मुक्त होने के लिये भक्ति ही प्रसिद्ध उपाय है उससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं है; तथापि आप अपने विशुद्ध वचनों से मेरे हृदय की संशय-ग्रन्थिका छेदन कीजिये।।11।।

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसंप्रवाहम्।

भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः।।12।।

प्रमाद-रहित सिद्धगण श्रीरामचन्द्रजी को परम, अद्वितीय, सबके आदिकारण और प्रकृति के गुण–प्रवाह से परे बतलाते हैं तथा वे अहर्निश उनका भजन करके परमपद भी प्राप्त करते हैं।।12।।

वदन्ति केचित्परमोऽपि रामः स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम्।

जानाति नात्मानमतः परेण सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम्।।13।।

परन्तु कोई-कोई कहते हैं कि राम परब्रह्म होनेपर भी अपनी माया से आवृत्त हो जाने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे। इसलिये अन्य (वशिष्ठादि) के उपदेश से उन्होंने आत्मतत्त्व को जाना।।13।।

यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण।

जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः।।14।।

अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भि-स्तदब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम्।।15।।

अतः मैं पूछती हूँ कि यदि वे आत्मतत्त्व को जानते थे, तो उन परमात्मा ने सीता के लिये इतना विलाप क्यों किया ?और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवों के समान ही हुए; फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिए ?इस विषय में आपका क्या विचार है

सो ऐसे वाक्यों में कहिए जिससे मेरा सन्देह निवृत्त हो जाय।।14–15।।

श्री महादेव उवाच

धन्यासि भक्तासि परात्मनस्त्वं यज्ज्ञातुमिच्छा तव रामतत्त्वम्।

पुरा न केनाप्यभिचोदितोऽहं वक्तुं रहस्यं परमं निगूढम्।।16।।

श्री महादेव जी बोले – देवि ! तुम धन्य हो, तुम परमात्मा की परम भक्त हो, जो तुम्हें राम का तत्त्व जानने की इच्छा हुई है। इससे पूर्व, इस परमगूढ़ रहस्य का वर्णन करने के लिये मुझसे और किसी ने नहीं कहा।।16।।

त्वयाद्य भक्तया परिनोदितोऽहं वक्ष्ये नमस्कृत्य रघूत्तमं ते।
रामः परात्मा प्रकृतेरनादि–रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि।।17।।
आज तुमने मुझसे भक्तिपूर्वक प्रश्न किया है इसलिये मैं श्री रघुनाथ जी की वन्दना कर तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। श्रीरामचन्द्र जी निःसन्देह प्रकृति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और पुरुषोत्तम हैं।।17।।

स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ़ आत्मा स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे।।18।।
जो अपनी माया से ही इस सम्पूर्ण जगत् को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाश के समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मारूप से सबके अन्तःकरण में स्थित हुए अपनी माया से इस विश्व को परिचालित कर रहे हैं।।18।।

जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि।
एतन्न जानन्ति विमूढचित्ताः स्वाविद्यया संवृतमानसा ये।।19।।
चुम्बक के निकट होने से जिस प्रकार जड़ लोहे में गति उत्पन्न हो जाती है उस प्रकार जिनकी सन्निधिमात्र से यह विश्व सदा सब ओर भ्रमता रहता है उन परमात्मा राम को, जिनका हृदय आत्मा के अज्ञान से ढँका हुआ है, वे मूढ़जन नहीं जान सकते।।19।।

स्वाज्ञानमप्यात्मनि शुद्धबुद्धे स्वारोपयन्तीह निरस्तमाये।
संसारमेवानुसरन्ति ते वै पुत्रादिसक्ताः पुरुकर्मयुक्ताः।।20।।
वे मूढ़ उन मायातीत शुद्ध-बुद्ध परमात्मा में भी अपने अज्ञान को आरोपित करते हैं अर्थात् उन्हें भी अपने समान ही अज्ञानी मानते हैं, तथा सर्वदा वे स्त्री-पुत्रादि में आसक्त रहने वाले पामर जीव बहुत से कर्मों में लगे रहकर संसारचक्र में ही पड़े रहते हैं।।20।।

जानन्ति नैवं हृदये स्थितं वै चामीकरं कण्ठगतं यथाज्ञाः।
यथाप्रकाशो न तु विद्यते रवौ ज्योतिःस्वभावे परमेश्वरे तथा।
विशुद्धविज्ञानघने रघूत्तमे-ऽविद्या कथं स्यात्परतः परात्मति।।21।।
वे अज्ञजन अपने गले में पड़े हुए कण्ठे को न जानने के समान अपने ही हृदय में स्थित परमात्मा रामको नहीं जानते (इसीलिए उनमें अज्ञानादि का आरोप करते हैं)। वास्तव में तो जिस प्रकार सूर्य में कभी अन्धकार नहीं रहता उसी प्रकार प्रकृत्यादि से अतीत, विशुद्ध-विज्ञानघन, ज्योतिस्वरूप, परमेश्वर परमात्मा राम में भी अविद्या नहीं रह सकती।।21।।

यथा हिं चाक्ष्णा भ्रमता गृहादिकं विनष्टदृष्टेर्भ्रमतीव दृश्यते।
तथैव देहेन्द्रियकर्तुरात्मनः कृतं परेऽध्यस्य जनो विमुह्यति।।22।।
और जिस प्रकार चक्कर लगाते समय मनुष्य को नेत्रों के घूमने से गृह आदि भी घूमते हुए प्रतीत होते हैं उसी प्रकार लोग अपने देह और इन्द्रियरूप कर्त्ता के किये हुए कर्मों का आत्मा में आरोप करके मोहित हो जाते हैं।।22।।

नाहो न रात्रिः सवितुर्यथा भवेत् प्रकाशरूपाव्यभिचारतः क्वचित्।
ज्ञानं तथाज्ञानमिदं द्वयं हरौ रामेकथं स्थास्यति शुद्धचिद्घने।।23।।
प्रकाशरूपता का कभी व्यभिचार न होने से जिस प्रकार सूर्य में रात-दिन का भेद नहीं होता – वह सर्वदा एक समान प्रकाशमान रहता है – उसी प्रकार शुद्ध चेतनघन भगवान् राम में ज्ञान और अज्ञान दोनों कैसे रह सकते हैं ?।।23।।

तस्मात्परानन्दमये रघूत्तमे विज्ञानरूपे हि न विद्यते तमः।
अज्ञानसाक्षिण्यरविन्दलोचने मायाश्रयत्वान्न हि मोहकारणम्।।24।।
अतएव परानन्दस्वरूप विज्ञानघन अज्ञान-साक्षी कमलनयन भगवान राम में अज्ञान का लेश भी नहीं है, क्योंकि वे माया के अधिष्ठान हैं इसलिए वह उन्हें मोहित नहीं कर सकती।।24।।

अत्र ते कथयिष्यामि रहस्यमपि दुर्लभम्।
सीताराममरुत्सूनुसंवादं मोक्षसाधनम्।।25।।
हे पार्वती ! इस विषय में मैं तुम्हें सीता, राम और हनुमानजी का मोक्ष का साधन-रूप संवाद सुनाता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय और परम दुर्लभ है।।25।।

पुरा रामायणे रामो रावणं देवकण्टकम्।
हत्वा रणे रणश्लाघी सपुत्रबलवाहनम्।।26।।
सीतया सह सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः।
अयोध्यामगमद्रामो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः।।27।।

पूर्व काल में रामावतार के समय जब युद्ध प्रिय श्रीरामचन्द्र जी देवताओं के कण्टकरूप रावण को सन्तान, सेना और वाहनों के सहित युद्ध में मारकर सीता, सुग्रीव और लक्ष्मण के सहित हनुमान् आदि वानरों से घिरे हुए अयोध्यापुरी में आये।।26–27।।

अभिषिक्तः परिवृतो वसिष्ठाद्यैर्महात्मभिः।
सिंहासने समासीनः कोटिसूर्यसमप्रभः।।28।।

और वहाँ आकर राज्याभिषेक होने पर वशिष्ठ आदि महात्माओं से घिरकर करोड़ों सूर्यों की प्रभा धारण कर जब सिंहासन पर विराजमान हुए।।28।।

दृष्ट्वा तदा हनूमन्तं प्रांजलिं पुरतः स्थितम्।
कृतकार्यं निराकाङ्क्षं ज्ञानापेक्षं महामतिम्।।29।।
रामः सीमामुवाचेदं ब्रूहि तत्त्वं हनूमते।
निष्कल्मषोऽयं ज्ञानस्य पात्रं नौ नित्यभक्तिमान्।।30।।

उस समय, जो सेवा के समस्त कार्य कर चुका है और उनका कोई बदला नहीं चाहता है ऐसे भोगेच्छा रहित महामति हनुमान्‌जी को ज्ञानाभिलाषा से अपने सम्मुख हाथ जोड़े खड़े देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से ऐसा कहा – "सीते ! यह हनुमान् हम दानों में अत्यन्त भक्ति रखता है, इसलिए यह निष्पाप है और ज्ञान का सुयोग्य पात्र है। अतः तुम इसे मेरे तत्त्व का उपदेश करो"।।29–30।।

तथेति जानकी प्राह तत्त्वं रामस्य निश्चितम्।
हनूमते प्रपन्नाय सीता लोकविमोहिनी।।31।।

तब लोक-विमोहिनी जनकनन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्र जी से 'बहुत अच्छा' कह शरणागत हनुमान् को भगवान् राम का निश्चित तत्त्व बताने लगीं।।31।।

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्।।32।।
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरंजनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्।।33।।

सीताजी ने कहा – "वत्स हनुमान् ! तुम राम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो; ये निःसन्देह समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषय, आनन्दघन, निर्मल शान्त, निर्विकार, निरंजन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं।।32–33।।

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य सन्निधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता।।34।।

और मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाली मूल-प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी सन्निधिमात्र से इस विश्व की रचना किया करती हूँ।।34।।

तत्सान्निध्यान्मया सृष्टं तस्मिन्नारोप्यतेऽबुधैः।
अयोध्यानगरे जन्म रघुवंशेऽतिनिर्मले।।35।।

तो भी इनकी सन्निधिमात्र से की हुई मेरी रचना को बुद्धिहीन लोग इनमें आरोपित कर लेते हैं। अतएव, अयोध्यापुरी में अत्यन्त पवित्र रघुकुल में इनका जन्म लेना।।35।।

विश्वामित्रसहायत्वं मखसंरक्षणं ततः।
अहल्याशापशमनं चापभंगो महेशितुः।।36।।

फिर विश्वामित्र जी की सहायता करना, उनके यज्ञ की रक्षा करना, अहिल्या को शापमुक्त करना, श्री महादेवजी के धनुष को तोड़ना।।36।।

मत्पाणिग्रहणं पश्चाद्भार्गवस्य मदक्षयः।
अयोध्यानगरे वासो मया द्वादशवार्षिकः।।37।।

तत्पश्चात् मेरा पाणिग्रहण करना, परशुराम जी का गर्व-खण्डन करना तथा बारह वर्ष तक मेरे साथ अयोध्यापुरी में रहना।।37।।

दण्डकारण्यगमनं विराधवध एव च।
मायामारीचमरणं मायासीताहृतिस्तथा।।38।।

फिर दण्डकारण्य में जाना, विराध का वध करना, माया-मृगरूप मारीच का मारा जाना, मायामयी सीता का हरा जाना।।38।।

जटायुषो मोक्षलाभः कबन्धस्य तथैव च।
शबर्याः पूजनं पश्चात्सुग्रीवेण समागमः।।39।।

तदनन्तर जटायु और कबन्ध का मुक्त होना, शबरी द्वारा भगवान् का पूजित होना और सुग्रीव से मित्रता होना।।39।।

वालिनश्च वधः पश्चात्सीतान्वेषणमेव च।
सेतुबन्धश्च जलधौ लंकायाश्च निरोधनम्।।40।।

फिर वालि का वध करना, सीताजी की खोज करना, समुद्र का पुल बँधवाना और लंकापुरी को घेर लेना।।40।।

रावणस्य वधो युद्धे सपुत्रस्य दुरात्मनः।
विभीषणे राज्यदानं पुष्पकेण मया सह।।41।।
अयोध्यागमनं पश्चाद्राज्ये रामाभिषेचनम्।
एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्तिरामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मति।।42।।

तथा पुत्रों के सहित दुरात्मा रावण को युद्ध में मारना एवं विभीषण को लंका का राज्य देकर पुष्पक विमान द्वारा मेरे साथ अयोध्या लौट आना, फिर श्रीरामजी का राज्य पद पर अभिषिक्त होना – इत्यादि समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए हैं तो भी अज्ञानी लोग उन्हें इन निर्विकार सर्वात्मा भगवान् राम में आरोपित करते हैं।।41–42।।

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोच–
त्याकाङ्क्षतेत्यजतिनोनकरोतिकिंचित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो
मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति।।43।।

ये राम तो (वास्तव में) न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन हैं, केवल माया के गुणों से व्याप्त होने के कारण ही ये वैसे प्रतीत होते हैं"।।43।।

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम्।
शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामिह्यात्मानात्मपरात्मनाम्।।44।।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने सम्मुख खड़े हुए पवनपुत्र हनुमान् से स्वयं कहा – "मैं तुम्हें आत्मा, अनात्मा और परमात्मा का तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो।।44।।

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान्।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः।।45।।

जलाशय में आकाश के तीन भेद स्पष्ट दिखाई देते हैं – एक महाकाश (जो सर्वत्र व्याप्त है), दूसरा जलावच्छिन्न आकाश (जो केवल जलाशय में ही परिमित है), और तीसरा प्रतिबिम्बाकाश (जो जल में प्रतिविम्बित है)। जैसे आकाश के ये तीन बड़े-बड़े भेद दिखायी देते हैं।।45।।

बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम्।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः।।46।।

उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकार का है – एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतना (जो बुद्धि में व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता है – जिसको आभास चेतन कहते हैं।।46।।

सामासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाबुधैः।।47।।

इनमें से केवल आभास-चेतन के सहित बुद्धि में ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभास के सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है। किन्तु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मा में कर्तृत्व और जीवत्व का आरोप करते हैं अर्थात् उसे ही कर्त्ता-भोक्ता मान लेते हैं।।47।।

आभासस्तु मृपा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः।।48।।

(हमने जिसे जीव कहा है उसमें) आभास-चेतन तो मिथ्या है (क्योंकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते हैं), बुद्धि अविद्या का कार्य है और परब्रह्म परमात्मा वास्तव में विच्छेद रहित है। अतः उसका विच्छेद भी विकल्प से ही माना हुआ है।।48।।

अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा।।49।।

(इसी प्रकार उपाधियों का बाध करते हुए) साभास अहंरूप अवच्छिन्न चेतन (जीव) की 'तत्त्वमसि' (तू वह है) आदि महावाक्यों द्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता बतलायी जाती है।।49।।

ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः।।50।।

जब महावाक्य द्वारा (इस प्रकार) जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है उस समय अपने कार्यों सहित अविद्या नष्ट हो ही जाती है – इसमें कोई सन्देह नहीं।।50।।

एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते।
मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि।।51।।

मेरा भक्त इस उपर्युक्त तत्त्व को समझ कर मेरे स्वरूप को प्राप्त होने का पात्र हो जाता है पर जो लोग मेरी भक्ति को छोड़कर शास्त्ररूप गढ़े में पड़े भटकते रहते हैं उन्हें सौ जन्मों तक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है।।51।।

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो
मयैव साक्षात्कथितं तवानघ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया
दात्व्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम्।।52।।

हे अनघ ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप राम का हृदय है; और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोक के राज्य से भी अधिक सम्पत्ति मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्ति से हीन किसी दुष्ट पुरुष को मत सुनाना"।।52।।

श्रीमहादेव उवाच

एतत्तेऽभिहितं देवि श्रीरामहृदयं मया।
अतिगुह्यतम्। हृद्यं पवित्रं पापशोधनम्।।53।।

श्रीमहादेवजी बोले – हे देवि ! मैंने तुम्हें यह अत्यन्त गोपनीय, हृदयहारी, परम पवित्र और पापनाशक 'श्रीरामहृदय' सुनाया है।।53।।

साक्षाद्रामेण कथितं सर्ववेदान्तसंग्रहम्।
यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तो नात्र संशयः।।54।।

यह समस्त वेदान्त का सार-संग्रह साक्षात् श्री रामचन्द्र जी का कहा हुआ है। जो कोई इसे भक्तिपूर्वक सदा पढ़ता है वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है।।54।।

ब्रह्महत्यादिपापानि बहुजन्मार्जितान्यपि।
नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा।।55।।

इसके पठन मात्र से अनेक जन्मों के संचित ब्रह्म हत्यादि समस्त पाप निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि श्रीराम के वचन ऐसे ही हैं।।55।।



योऽतिभ्रष्टोऽतिपापी परधनपरदा–
रेषु नित्योद्यतो वा
स्तेयी ब्रह्मन्धमातापितृवधनिरतो
योगिवृन्दापकारी।
यः संपूज्याभिरामं पठति च हृदयं
रामचन्द्रस्य भक्त्या
योगीन्द्रैरप्यलभ्यं पदमिह लभते
सर्वदेवैः स पूज्यम्।।56।।

जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, अतिशय पापी, परधन और परस्त्रियों में सदा प्रवृत्त रहने वाला, चोर, ब्रह्म–हत्यारा, माता–पिता का वध करने में लगा हुआ और योगिजनों का अहित करने वाला मनुष्य भी श्रीरामचन्द्र जी का पूजन कर इस रामहृदय का भक्तिपूर्वक पाठ करता है वह समस्त देवताओं के पूज्य उस परम पद को प्राप्त होता है जो योगिराजों को भी परम दुर्लभ है।।56।।

आन्तरिक परिसर :

श्रीहनुमान जी

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराजाधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।

(3, मंगलाचरण, सुन्दरकाण्ड, मानस)

अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन (को ध्वंस करने) के लिये अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्रीरघुनाथ जी के प्रिय भक्त पवनपुत्र श्री हनुमान् जी को मैं प्रणाम करता हूँ।



सुग्रीव जी

राम कहा अनुजहि समुझाई। राज देहु सुग्रीवहि जाई।।
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।।*
दोहा लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज।।

(10(9–10), 11, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

लक्ष्मण जी ने तुरंत सब नगरवासियों को और ब्राह्मणों के समाज को बुला लिया और (उनके सामने) सुग्रीव को राज्य और अंगद को युवराज पद दिया।। *तब श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई लक्ष्मण को समझाकर कहा कि तुम जाकर सुग्रीव को राज्य दे दो। श्रीरघुनाथ जी की प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुराथ जी के चरणों में मस्तक नवाकर चले।।



श्रीभरत जी

भरतो नाम कैकेय्यां यज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैःसमुदितोगुणैः।।

(13–18. बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

तदनन्तर कैकेयी से सतय-पराक्रमी भरत का जन्म हुआ, जो श्री भगवान् विष्णु के साक्षात् (स्वरूप-भूत-पायस-खीर) के चतुर्थांश से भी न्यून भाग से प्रकट हुए थे। ये समस्त सद्‌गुणों से सम्पन्न थे।।

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।

196(7), बालकाण्ड, मानस

जो संसार का भरण-पोषण करते हैं, उन (आपके दूसरे पुत्र) का नाम 'भरत' होगा।



श्री विभीषण जी

दोहा – श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर।।

(45, सुन्दरकाण्ड, मानस)

(विभीषण ने श्री रघुनाथ जी से कहा –)

मैं कानों से आपका सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भय का नाश करने वाले हैं। हे दुखियों के दुःख दूर करने वाले और शरणागत को सुख देने वाले श्री रघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।।



श्री लक्ष्मण जी

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

196, बालकाण्ड, मानस

जो शुभ लक्षणों के धाम श्रीराम के प्यारे और सारे जगत् के आधार हैं, गुरु वशिष्ठ जी ने उनका 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रखा।।

श्री अंगद जी



प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु।।
स्वयंसिद्ध सब काजनाथ मोहि आदरु दियऊ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ।।

(17(क–ख), लंकाकाण्ड, मानस)

प्रभु की आज्ञा सिर चढ़ाकर और उनके चरणों की वन्दना करके अंगद जी उठे (और बोले –) हे भगवान् श्रीरामजी ! आप जिस पर कृपा करें, वही गुणों का समुद्र हो जाता है। स्वामी के सब कार्य अपन-आप सिद्ध हैं; यह तो प्रभु ने मुझको आदर दिया है (जो मुझे अपने कार्य पर भेज रहे हैं)। ऐसा विचारकर युवराज अंगद का हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया।।



श्री अगस्त्यमुनि

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा।
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही।।
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए।
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई।।

(11 (7–10), अरण्यकाण्ड, मानस)

हे नाथ ! अयोध्या के राजा दशरथ जी के कुमार जगदाधार श्रीरघुनाथ जी छोटे भाई लक्ष्मण जी और सीता जी सहित मिलने आये हैं, जिनका हे देव ! आप रात-दिन जप करते रहते हैं।। यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े। भगवान् को देखते ही उनके नेत्रों में (आनन्द और प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। दोनों भाई मुनि के चरणकमलों पर गिर पड़े। ऋषि ने (उठकर) बड़े प्रेम से उन्हें हृदय से लगा लिया।।



श्री विश्वमित्र जी

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई।।
प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना।।

(208(ख)(3–4), बालकाण्ड, मानस)

श्याम और गौर वर्ण के दोनों भाई परम सुन्दर हैं। विश्वामित्र जी को महान् निधि प्राप्त हो गयी। (वे सोचने लगे –) मैं जान गया कि प्रभु ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों के भक्त) हैं। मेरे लिये भगवान् ने अपने पिता को भी छोड़ दिया।



श्री गौतम जी

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

(210. बालकाण्ड, मानस)

गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर की देह धारण किये बड़े धीरज से आपके चरणकमलों की धूलि चाहती है। हे रघुवीर ! इस पर कृपा कीजिए।



श्री भरद्वाज जी

बहुरि सपरिजन भरत कहुँ रिषि अस आयसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह।।
मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका।।
सुख समाजु नहि जाई बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी।।

(214(1–2), अयोध्याकाण्ड, मानस)

कुटुम्बसहित भरत जी को दिये, क्योंकि ऋषि भरद्वाज जी ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। (भरत जी चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिये उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर पीछे सपरिवार भरत जी को स्थान देने के लिये आज्ञा दी थी)

मुनिश्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देनेवाला वैभव रच दिया।। जब भरतजी ने मुनि के प्रभाव को देखा तो उसके सामने उन्हें (इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि) सभी लोकपालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं।।



श्री जमदग्नि जी

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षकम्।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः।।24।।
(नवम स्कन्ध / अ. 16 / श्रीमद्भागवत्)

महर्षि जमदग्नि को स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर की प्राप्ति हो गयी। परशुराम जी से सम्मानित होकर वे सप्तऋषियों के मण्डल में सातवें ऋषि हो गये।।

श्री अत्रिमुनि जी



पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए।।
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए।।
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने।।
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए।।

शरीर पुलकित हो गया, अत्रि जी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्रीराम जी और भी शीघ्रता से चले आये। दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजी को (उठाकर) मुनि ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रुओं के जल से दोनों जनों को (दोनो भाइयों को) नहला दिया। श्रीरामजी की छवि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम में ले आये। पूजन करके सुन्दर वचन कहकर मुनि ने मूल और फल दिये, जो प्रभु के मन को बहुत रुचे।



श्री अश्वत्थामा जी

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध –
मवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं
वामस्वभावा कृपयाननाम च ।।42।।
(प्रथम स्कन्ध / अ. 7 / श्रीमद्भागवत)

द्रौपदी ने देखा कि अश्वत्थामा पशु की तरह बाँधकर लाया गया है। निन्दित कर्म करने के कारण उसका मुख नीचे की ओर झुका हुआ है। अपना अनिष्ट करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामा को इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदी का कोमल हृदय कृपा से भर आया और उसने अश्वत्थामा को नमस्कार किया।।



श्री सनक सनन्दन जी

नाम प्रसाद संभु अबिनासी। साजु अमंगल मंगल रासी।।
सुख सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।

(25(1–2), बालकाण्ड, मानस)

नाम के प्रसाद से शिव जी अविनाशी हैं और अमंगल वेषवाले होने पर भी मंगल की राशि हैं। शुकदेव जी और सनकादि सिद्ध मुनि योगीगण नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानन्द को भोगते हैं।

तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः।
सनत्कुमारश्च तथा सनातन इति स्मृतः।।
विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणाः।
सहस्रत्रसूर्य संकाशाः सत्यवन्तो मुमुक्ष्वः।।

(4–5/2, माहात्म्य, वा.रामा.)

मैं आप लोगों से उनके नाम बताता हूँ, सुनिये। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन – ये चारों सनकादि माने गये हैं।। वे भगवान् विष्णु के भक्त और महात्मा हैं। सदा ब्रह्म के चिन्तन में लगे रहते हैं। बड़े सत्यवादी हैं। सहस्रोंत्रों सूर्यों के समान तेजस्वी एवं मोक्ष के अभिलाषी हैं।।



श्री सनत् कुमार जी



श्री कुमुद जी

ज्यों मुख मुकर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अद्‌भुत बानी।।
भूप भरतु मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू।।

(293(3–4), अयोध्याकाण्ड, मानस)

जैसे मुख (का प्रतिबिम्ब) दर्पण में दीखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरत जी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता)। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनक जी, भरतजी तथा मुनि वशिष्ठ जी समाज के साथ वहाँ गये जहाँ देवतारूपी कुमुदों के खिलानेवाले (सुख देने वाले) चन्द्रमा श्रीरामचन्द्र जी थे।



श्री अंगद जी

रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज।।

(35(क), लंकाकाण्ड, मानस)

शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालिपुत्र अंगदजी ने हर्षित होकर आकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमल पकड़ लिए उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में आनन्दाश्रु भरा है।



श्री दीधबल जी

दो. –द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।।

(54, सुन्दरकाण्ड, मानस)

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् – ये सभी बल की राशि हैं।

सौम्यः सोनात्मजश्चात्र राजन् दधिमुखः कपिः।।

22/30, युद्धकाण्ड, वा.रामा.)

राजन ! दधिमुख नामक सौम्य वानर चन्द्रमा का बेटा है।।



श्री जामवन्त जी

कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई।।
सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी।।
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा।।

(16(ख)(1–4), लंकाकाण्ड, मानस)

यहाँ (सुबेल पर्वत पर) प्रातःकाल श्रीरघुनाथ जी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइये, अब क्या उपाय करना चाहिए ? जाम्बवान् ने श्रीरामजी के चरणों में सिर नवाकर कहा –

"हे सर्वज्ञ ! हे सबके हृदय में बसने वाले (अन्तर्यामी) ! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणों की राशि ! सुनिये ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाय !



श्री पनस जी

अंगदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान् पनसोनलः।
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव।।31।।

(तृतीय सर्ग / युद्धकाण्ड / वा.रामा.)

(श्रीहनुमान जी ने कहा –)

अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और सेनापति नील – इतने ही वानर लंकाविजय करने के लिये पर्याप्त हैं। बाकी सेना लेकर आपको क्या करना है ?



श्री गवय जी

सुहोत्रं च शरारिं च शरगुल्मं तथैव च।
गजं गवाक्षं गवयं सुषेणं वृषभं तथा।।3।।

(41 अ., किष्किन्धाकाण्ड, वा.रामा.)

सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण (प्रथम), वृषभ, मैन्द, सुषेण, अनंग (असंग) तथा अंगद आदि प्रधान-प्रधान वीरों को, जो महान् वेग और पराक्रम से सम्पन्न थे, विशेषज्ञ वानरराज सुग्रीव ने दक्षिण की ओर जाने की आज्ञा दी।।



श्री केसरी जी

दोहा – द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।।
(54, सुन्दरकाण्ड, मानस)

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् – ये सभी बल की राशि हैं।



श्री गवाक्ष जी

गजश्च गिरिसंकाशो गवयश्च महाबलः।
गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इवर्षभः।।15।।
(युद्धकाण्ड, चतुर्थसर्ग, वा.रामा.)

पर्वत के समान विशालकाय गज, महाबली गवय तथा मतवाले साँड की भाँति पराक्रमी गवाक्ष सेना के आगे-आगे चले।



श्री वसन्त जी

फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई।।
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसुमित नवतरु राजिबिराजा।।
(85(5–6), बालकाण्ड, मानस)

लौट जाने में लज्जा मालूम होती है और करते कुछ बनता नहीं। आखिर मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरंत ही सुन्दर ऋतुराज वसन्त को प्रकट किया। फूले हुए नये–नये वृक्षों की कतारें सुशोभित हो गयीं।



श्री हृदयमणि जी

दोहा – जुगुति बोधि पुनि पोहि अहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग।।11।।
(11, बालकाण्ड, मानस)

उन कवितारूपी मुक्तामणियों को युक्ति से बेधकर फिर रामचरित्ररूपी सुन्दर तागे में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुरागरूपी शोभा होती है (वे आत्यन्तिक प्रेम को प्राप्त होते हैं)।।



श्री गदाधर जी

जातौ भरतशत्रुघ्नो शंखचक्रे गदाभृतः।
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी।।
(18/4, बालकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

भगवान् गदाधर के शंख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप से अवतार लिया है तथा योगमाया जनकदुलारी सीताजी होकर प्रकट हुई हैं।



श्री शंखदेव जी

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त –
स्तूणेत्तसावक्षयसायकौ च।।31।।
(अष्टम स्कन्ध / अ. 20 / श्रीमद्भागवत)

बादल की तरह गम्भीर शब्द करनेवाला पाञ्चजन्य शंख (देव), विष्णु भगवान् की अत्यन्त वेगवती कौमोद की गदा, सौ चन्द्राकार चिह्नोंवाली ढाल और विद्याधर नाम की तलवार, अक्षय बाणों से भरे दो तरकस तथा लोकपालों के सहित भगवान् के सुनन्द आदि पार्षद्गण सेवा करने के लिए उपस्थित हो गये।।



श्री चक्रदेव जी

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्त्राराच्युतप्रिय।
सर्वास्त्रधातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते।।4।।
(नवम् स्कन्ध / अ. 5 / श्रीमद्भागवत)

भगवान् के प्यारे, हजार दाँतवाले सुदर्शन चक्रदेव जी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। समस्त अस्त्र–शस्त्रों को नष्ट कर देने वाले एवं पृथ्वी के रक्षक ! आप इन ब्राह्मणों की रक्षा कीजिए।।



श्री पद्मदेव जी

पद्मं विश्वं करे स्थितम्।
(गोपालोत्तर तापनीयोपनिषद्, 26)

पद्म, सम्पूर्ण विष्णु का प्रतीक है जो भगवान् विष्णु के हाथ में शोभित है।

श्री गदादेव जी

आदि विधा को ही गदा (देव) समझना चाहिये जो भगवान् विष्णु के हाथ में सदा स्थित रहती है –

आधा विधा गदा वेधा सर्वदा मे करे स्थिता।।

(गोपालतापनीयोपनिषद्, 26)

भगवान् विष्णु मन, इन्द्रिय और शरीर सम्बन्धी शक्तियों से युक्त प्राण तत्त्व रूप कौमुदी की गदा धारण करता है।





श्री नल जी

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।

(59(1–2), सुन्दरकाण्ड, मानस)

(समुद्र ने कहा –) हे रघुनाथ ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे।।

विश्वकर्मसुतो वीरो नलः पल्वगसत्तमः।।33।।

(30वाँ अध्याय, युद्धकाण्ड, वा.रामा.)

वानरशिरोमणि वीरवार नल विश्वकर्मा के पुत्र हैं।



श्री नील जी

बाँधा सुतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर।
बूड़हिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई।।

(2(3–4), लकांकाण्ड, मानस)

चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। श्रीरामजी की कृपा से उनका यह (उज्ज्वल) यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज के समान (स्वयं तैरने वाले और दूसरों को पार ले जानेवाले) हो गये। यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गयी है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है। श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गये।

पुत्रो हुतवहस्यात्र नीलः सेनापतिः स्वयम्।।24।।

(23 अध्याय, युद्धकाण्ड, वाल्मीकीय रामायण)

स्वयं सेनापति नील अग्नि का पुत्र है।



श्री वाल्मीकि जी

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमथउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित।।

(14(ख), बालकाण्ड, मानस)

मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने रामायण की रचना की है, जो खर (राक्षस) सहित होने पर भी खर (कठोर) से विपरीत, बड़ी कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होने पर भी दूषण अर्थात् दोषों से रहित है।।

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरूह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्।।

(34, रामरक्षास्तोत्रम्)

कवितामयी डाली पर बैठकर मधुर अक्षरों वाले 'राम-राम' इस मधुर नाम को कूजते हुए वाल्मीकिरूप कोकिल की मैं वन्दना करता हूँ।।





अन्तः – अहाता नं. 1

श्रीकृष्ण परिवार जी

जब जदुबंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिधारा।।

(87(1), बालकाण्ड, मानस)

जब पृथ्वी के बड़े भारी भार को उतारने के लिये यदुवंश में श्रीकृष्ण का अवतार होगा।



श्री जीवात्मा जी + श्री परमात्मा जी

स्थूलं सूक्ष्मं कारणाख्यमुपाधित्रितयं चितेः।
एतैर्विशिष्टो जीवः स्याद्वियुक्तः परमेश्वरः।।
(23 / 1, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

शुद्ध चेतन की स्थूल, सूक्ष्म और कारक – ये तीन उपाधियाँ हैं। इन उपाधियों से युक्त होने से वह जीव कहलाता है और इससे रहित होने से परमेश्वर कहा जाता है।।

श्री परमात्मा जी

जीवश्च परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः।
मानाभावस्तथा दम्भहिंसादिपरिवर्जनम्।।
(31 / 4, अरण्यकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

जीव और परमात्मा यह पर्याय शब्द हैं – दोनों का अभिप्राय एक ही है; अतः इसमें भेद-बुद्धि नहीं (करनी चाहिये)। अभिमान से दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदि का त्याग करना।।





श्री ज्ञानात्मा जी

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतिभ्यो विलक्षणः।
चिदात्माहं नित्यशुद्धो बुद्ध एवेति निश्चयम्।।
(38 / 4, अरण्यकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

जिससे ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकार आदि से विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ वही ज्ञान है ,यह मेरा निश्चय है।



श्री आत्म प्रतिष्ठा जी

अयं हि विश्वोद्भवसंयमाना –
मेकः स्व मायागुणबिम्बितो यः
विचिञ्चिविष्णवीश्वरनामभेदान् –
धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा।।
(50/5, बालकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

जो अकेले ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और नाश के लिये अपनी माया के गुणों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव नामक विभिन्न रूप धारण करते हैं वे स्वतन्त्र और परिपूर्ण आत्मा आप ही हैं।।



श्री कृष्ण वासुदेव जी

दोहा – द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग।।
(143, बालकाण्ड, मानस)

द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जप करते थे। भगवान् वासुदेव के चरणकमलों में उन राजा-रानी का मन बहुत ही लग गया।



श्री बलराम जी

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेव सम धर बसुधा के।।
जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से।।
(19(7–8), बालकाण्ड, मानस)

ये सुन्दर गति (मोक्ष) रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेषजी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं, भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमल में विहार करनेवाले भौंरे के समान हैं और जीभरूपी यशोदा जी के लिए श्रीकृष्ण और बलराम जी के समान आनन्द देने वाले हैं।



श्री प्रद्युम्न जी

कृष्न तनय होइहि पति तोरा। बचनु अन्यथा होइ न मोरा।।

(87(2), बालकाण्ड, मानस)

तब तेरा पति उनके पुत्र (प्रद्युन) के रूप में उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन अन्यथा नहीं होगा।

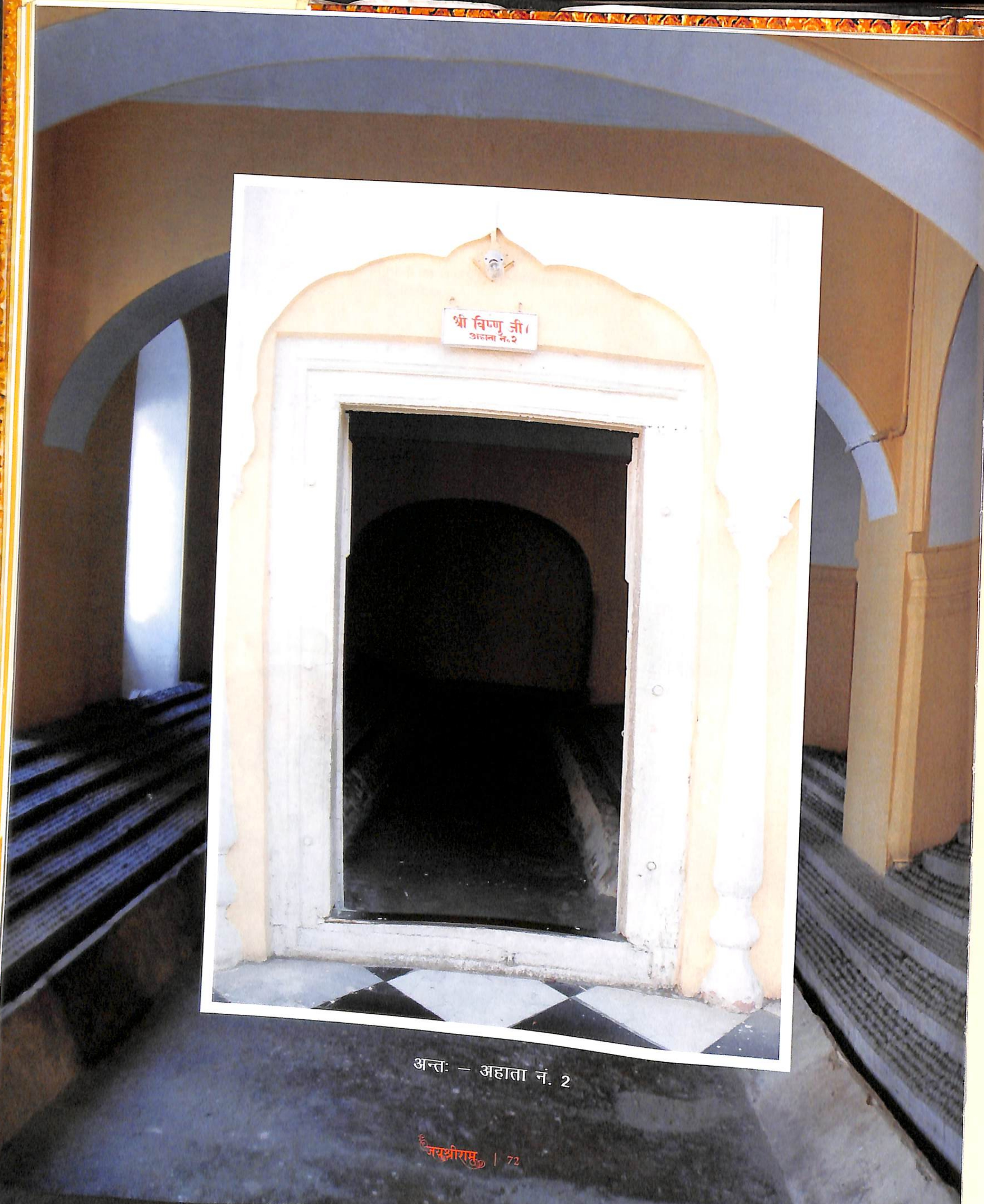
श्रीलक्ष्मी नारायण जी

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता।।

(11/5, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

ये राम आदिनारायण भगवान् विष्णु हैं और ये जानकी जी योगमाया नाम से विख्यात श्रीलक्ष्मी जी हैं।





अन्तः – अहाता नं. 2



श्री विष्णु जी

दोहा – नील सरोरूह नील मनि नील नीरधर स्याम।

लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम।।46।।

छबिसमुद्र हरि रूप बिलोकी। एकएक रहे नयन पट रोकी।।

चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनुसतरूपा।।

(147(5–6), बालकाण्ड, मानस)

भगवान् के नीचे कमल, नीलमणि और नीले (जलयुक्त) मेघ के समान (कोमल, प्रकाशमय और सरस) श्यामवर्ण (चिन्मय) शरीर की शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं। शोभा के समुद्र श्रीहरि के रूप को देखकर मनु-शतरूपा नेत्रों के पट पलकें रोके हुए एकटक (स्तब्ध) रह गये। उस अनुपम रूप को वे आदरसहित देख रहे थे और देखते–देखते अघाते ही न थे।

श्यामावदातस्तैर्विष्णुनीलैर्नक्तंचरोत्तमैः।

वृतोऽञ्जनगिरीवायं वर्षमाणैः पयोधरैः।।

(2.7 उत्तरकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

भगवान् विष्णु का श्रीविग्रह उज्ज्वल श्यामवर्ण से सुशोभित था और अस्त्र–शस्त्रों की वर्षा करते हुए वे श्रेष्ठ निशाचर नीले रंग के दिखायी देते थे; इसलिये ऐसा जान पड़ता था, मानो अञ्जनगिरि को चारों ओर से घेर कर मेघ उस पर जल की धारा बरसा रहे हों।।

भगवान श्री दत्तात्रेय

जगुत्पत्तिकर्त्रे च स्थितिसंहारहेतवे।

भूभारविनाशाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते।।

(नारद पुराण)

संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार के हेतुकर्त्ता पृथ्वी पर अधर्म की वृद्धि से विनाश को रोकने के लिए भगवान 'त्रिदेव' दत्तात्रेय के चरणों में नतमस्तक प्रार्थना करता हूँ।

भगवान् श्रीदत्तात्रेय की 'त्रिमूर्ति' अ–उ–म रूप ऊँ ही है। वह त्रिमूर्ति 'त्रित' में 'ऐक्य' का तत्त्वज्ञान अनावृत करती है। ऊँ (अक्षर ब्रह्म) को सृष्टि का अनादिकारक माना गया है, जिनका योगीजन ध्यान करते हैं –

ओंकार विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।

दत्तात्रेयो हरिः साक्षात् गौर्मुक्तिस्वरूपिणी।।

दत्तात्रेय साक्षात् हरि हैं और उनके समीपस्थ जो गौ है, वह साक्षात् मुक्ति है।

(साभार : श्रीदत्तोपासना)





श्री विराट् स्वरूप जी

दोहा – बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ।।
(29, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किन्तु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं।

एवं सहस्स्रवदनाङ्घ्रिशिरःकारोरु
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम्।
मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं
दृष्ट्वा मापुरुषमापमुहं विरिञ्चः।।
(ब्रह्मादिकृत नृसिंहस्तोत्रम्)

इस प्रकार सहस्रों वदन, चरण, शिर, हाथ, अरू, नासिका, मुख, कर्ण, नयन, आभूषण और आयुधों से सम्पन्न चौदह लोकरूप अवयवों से विभूषित आप मायामय विराट पुरुष का दर्शन कर ब्रह्मा जी को परमानन्द प्राप्त हुआ।



श्री मत्स्यावतार जी

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्।
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे।।
(संदर्भ : श्रीदशावतारस्तोत्रम्)

हे मीनावतार केशव ! हे जगदीश्वर ! हे हरे ! प्रलयकाल में बढ़े हुए समुद्रजल में बिना क्लेश नौका चलाने की लीला करते हुए, आपने वेदों की रक्षा की थी, आपकी जय हो।

एष रूद्रस्तामसोऽन्ते जगत्प्रलयकारणम्।
एष मत्स्यः पुरा भूत्वा भक्तं वैवस्वतं मनुम।।
नाव्यारोप्य लयस्यान्ते पालयामास राघवः।
(14 / 5, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

पूर्वकाल में इन्हीं रघुनाथजी ने मत्स्यरूप होकर अपने भक्त वैवस्वत मनु को नाव में बैठाकर प्रलयकाल के समय उनकी रक्षा की थी।



श्री कूर्मावतार जी

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।
धरणि धरणकिणचक्रगरिष्ठे।।
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे।।
(संदर्भ : श्रीदशावतारस्तोत्रम्)

हे केशव ! पृथ्वी के धारण करने के चिह्न से कठोर और अत्यन्त विशाल तुम्हारी पीठ पर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूप धारी जगत्पति आप हरि की जय हो।

समुद्रमथने पूर्वं मन्दरे सुतलं गते।।
अध्यारयत्स्वपृष्ठेऽद्रिं कूर्मरूपी रघुत्तमः।
(15 / 5, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

समुद्र-मन्थन के समय, जब मन्दराचल पाताल लोक को जाने लगा। तब इन्हीं रघुनाथ जी ने कूर्मरूप होकर उसे अपनी पीठ पर धारण किया था।

श्री नृसिंहावतार जी

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल।।
(27. बालकाण्ड, मानस)

रामनाम श्रीनृसिंह भगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले जन प्रह्लाद के समान हैं; यह रामनाम देवताओं के शत्रु (कलियुग रूपी दैत्य) को मारकर जप करनेवालों की रक्षा करेगा।

नारसिंहं वपुः कृत्वा प्रह्लादवरदः पुरा।।
त्रैलोक्यकष्टकं रक्षः पाटयामास तन्नखैः।
(16/5, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

एक बार प्रह्लाद को वर देने के लिये इन्होंने नृसिंह रूप धारण किया।। और तीनों लोकों के कण्टकरूप दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ डाला।

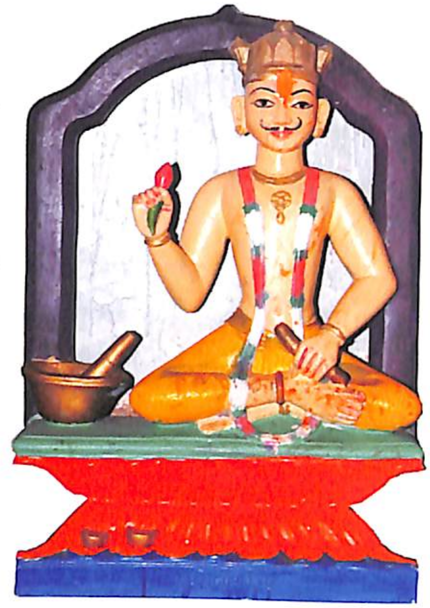




श्री पंचमुखी हनुमान जी

पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम्।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकाम्यार्थसिद्धिदम्।।
(33.2, पंचमुख हनुमत्प्रकरण, श्रीविद्यार्णवतन्त्र)

हनुमान जी पञ्चवक्त्र एवं अत्यन्त भयंकर हैं, वे पंद्रह नेत्रों और दस भुजाओं से सुशोभित हैं। वे समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं। इनके पूर्व दिशा का मुख वानर का है; यह करोड़ों सूर्य की प्रभा से युक्त है। दक्षिण की ओर का मुख नरसिंह आकार का है; यह महान् अद्भुत, भीषण और भय को नष्ट कर देता है। नरसिंहवक्त्र हनुमान जी का शरीर अत्यन्त उग्र तेज से प्रदीप्त है। पश्चिम दिशावाला मुख गरुड़ का है; इससे समस्त रोगों का शमन होता है। यह विषरोग का निवारण करता है। उत्तराभिमुख हनुमान सूकरवक्त्रवाले हैं। यह मुख नीले नभ के समान श्याम वर्ण का है। यह ज्वररोग का नाश करता है। ऊर्ध्वमुख हय–अश्व के आकार का है; यह दानवों का नाश करता है।



श्री सुषेन वैद्य जी

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।।
(55. लंकाकाण्ड, मानस)

सुषेण ने आकर श्रीराम जी के चरणारविन्दों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि) हे पवनपुत्र ! औषधि लेने जाओ।

सुषेणश्चात्र धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान्।।22/1।।
(30वाँ सर्ग, युद्धकाण्ड, वा.रा.)

धर्मात्मा और पराक्रमी सुषेण धर्म का पुत्र है।।



श्री वराहावतार जी

मही रसातलं याता प्रलये सूकरोऽभवत्।
तोलयामास दंष्ट्राग्रे तां क्षोणीं रघुनन्दनः।।
(16/5, अयोध्याकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

प्रलयकाल में जब पृथ्वी रसातल को चली गयी तो ये (रघुनाथ जी) शूकररूप हुए। और उस पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठा लिया।



श्री कपिलदेव जी

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी।।
आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला।।
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व बिचार निपुन भगवाना।।
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला।।
(141(5–8), बालकाण्ड, मानस)

पुनः देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदिदेव, दीनों पर दया करनेवाले समर्थ एवं कृपालु भगवान् कपिल को गर्भ में धारण किया। तत्त्वों का विचार करने में अत्यन्त निपुण जिन (कपिल) भगवान् ने सांख्यशास्त्र का प्रकट रूप में वर्णन किया, उन (स्वांयम्भुव) मनु जी ने बहुत समय तक राज्य किया और सब प्रकार से भगवान् की आज्ञा (रूप शास्त्रों की मर्यादा) का पालन किया।।

श्री ह्यग्रीवारूप

तस्मै भवान् ह्यशिटस्तनुवं च बिभ्रद्
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ।
हत्वाऽऽनयच्छुतिगणांस्तु रजस्तमश्च
सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमाममन्ति।।30।।

ब्रह्मा ने ह्ययग्रीव रूप धारण कर अति प्रबल और वेदद्रोही रजोगुण-तमोगुण मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों को मानकर उन ब्रह्मा जी को सत्त्वगुणरूप समग्र वेद समर्पण किये। अतः सत्त्वगुण को ही आपका प्रियतम रूप कहा जाता है।।30।।

(संदर्भ : प्रहलादकृत नृसिंहस्तोत्रम्)



श्री भगवान् ह्यग्रीव का मन्त्र

'हुं ऐं ह्यग्रीवाय नमः।'

श्रीलक्ष्मी नृसिंह

'क्षौ ह्रीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः।'
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाभ्यहम्।
(वृद्धहारीत. 3/341–42)

सूर्य	ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः
चन्द्रमा	ऊँ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्राय नमः
मंगल	ऊँ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः
बुध	ऊँ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः
गुरु	ऊँ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः
शुक्र	ऊँ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः
शनि	ऊँ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः
राहु	ऊँ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः
केतु	ऊँ म्रां म्रीं म्रौं सः केतवे नमः





श्री कल्किावतार जी

म्लेच्छनिवधनिधने कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।।
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीशहरे।।90।।

जो म्लेच्छसमूह का नाश करने के लिये धूमकेतु के समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशव की जय हो।

(संदर्भ : श्रीदशावतार स्तोत्रम्)



श्री नरनारायण जी

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता।।
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन।।
(19(5–6), बालकाण्ड, मानस)

ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत् का पालन और विशेषरूप से भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं। ये भक्तिरूपिणी सुन्दर स्त्री के कानों के सुन्दर आभूषण (कर्णफूल) हैं और जगत् के हित के लिये निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं।।



श्री राजा विक्रमादित्य विक्रमादित्यराजा। यथा –

"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु –
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरोनृपतेःसभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।"
इति नवरत्न श्लोकः।। 373/4, शब्दकल्पद्रुमः।।



श्री राजा जनमेजय जी

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान महोरगान्।
दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ।।17।।
(अध्याय 6, द्वादश स्कन्ध/श्रीमद्भागवत)

तक्षक ने देखा कि जनमेजय के सर्प-सत्र की प्रज्वलित अग्नि में बड़े-बड़े महासर्प भस्म होते जा रहे हैं, तब वह अत्यन्त भयभीत होकर देवराज इन्द्र की शरण में गया।



श्री राजा पृथु जी

पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना।
पर अघ सुनइ सहस दस काना।।

(3(ख)(0), बालकाण्ड, मानस)

पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान् का यश सुनने के लिये दस हजार कान माँगे थे) के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजारों कानों से दूसरों के पापों को सुनते हैं।।



श्री राजा विष्णु जी

एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्।
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः।
ततः पद्मपलाशाक्षःकृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्।

(30–32 / 15, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

देवताओं को ऐसा वर देकर मनस्वी विष्णु ने मनुष्यलोक में पहले अपनी जन्मभूमि के सम्बन्ध में विचार किया। इसके बाद कमलनयन श्रीहरि ने अपने को चार स्वरूपों में प्रकट करके राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया।

श्री राजा रघु जी

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।

(8 (7–8), सुन्दरकाण्ड, मानस)

हे दशमुख ! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलिनी खिल सकती है ? जानकी जी फिर कहती हैं – तू (अपने लिये भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट ! तुझे श्रीरघुबीर के बाण की खबर नहीं है।।





अन्तः – अहाता नं. 3



श्री ब्रह्माजी

चार धाम

अमोघं देववीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमा।।
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि।।
(ब्रह्माकृत श्रीरामस्तवन, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड, 116/–30)

देव ! आपका बल अमोघ है। आपके पराक्रम भी व्यर्थ होनेवाले नहीं हैं। श्रीराम ! आपका दर्शन अमोघ है। आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इस भूमण्डल में अमोघ ही होंगे।



श्रीलक्ष्मण जी

बंदउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता।।
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका।।
सेष सहस्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन।।
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर।।
(16(5–8), बालकाण्ड, मानस)

मैं श्री लक्ष्मण जी के चरणकमलों को प्रणाम करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तों को सुख देने वाले हैं। श्रीरघुनाथ जी की कीर्तिरूपी विमल पताका में जिनका (लक्ष्मणजी का) यश (पताका को ऊँचा करके फहरानेवाले) दंड के समान हुआ।। जो हजार सिरवाले और जगत् के कारण (हज़ार सिरों पर जगत् को धारण कर रखने वाले) शेषजी है, जिन्होंने पृथ्वी का भय दूर करने के लिये अवतार लिया, वे गुणों की खान कृपासिन्धु सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मण जी मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।



श्री जामवंत जी

जामवंत कह सुनु रघुरायां। जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया।।
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर।।
(29(1–3), सुन्दरकाण्ड, मानस)

जाम्बवान् ने कहा – हे रघुनाथ जी ! सुनिये। हे नाथ ! जिसपर आप दया करते हैं, उसे सदा कल्याण और निरन्तर कुशल है। देवता, मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।



श्रीरामसेवक

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।।
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिऐ।।
(4, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

हे नाथ ! अब मुझ पर दयादृष्टि कीजिये और मैं जो वर माँगता हूँ उसे दीजिये। मैं कर्मवश जिस योनि में जन्म लूँ, वहीं श्रीरामजी (आप) के चरणों में प्रेम करूँ ! हे कल्याणप्रद प्रभो ! यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिये। और हे देवता और मनुष्यों के नाथ ! बाँह पकड़कर इसे अपना दास बनाइये।



श्री रामसेवक

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना।।
मन क्रम बचन रामपद सेवक।
सपनेहुँ आन भरोस न देवक।।
(9(1–2), अरण्यकाण्ड, मानस)

मुनि अगस्त्य जी के एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान् में प्रीति थी। वे मन, वचन और कर्म से श्रीराम के चरणों के सेवक थे। उन्हें स्वप्न में किसी दूसरे देवता का भरोसा नहीं था।



श्री शंकराचार्य जी

यदावर्णयत् कर्णमूलेऽन्तकाले
शिवो राम रामेति रामेति काश्याम्।
तदेकं परं तारकब्रह्मरूपं
भजेऽहं भजेऽहं भजेऽहं भजेऽहं।।
(आद्यशंकराचार्य कृत स्तोत्रम्)

काशी में भगवान् शंकर प्राणियों के अन्तकाल में उनके कानों के पास सटकर 'राम-राम' कहकर जिस राम नाम का उपदेश देते हैं, उन एक तारकब्रह्मस्वरूप भगवान् राम को मैं भजता हूँ।।

विशुद्धं परं सच्चिदानन्दरूपं
गुणाधारमाधारहीनं वरेण्यम्।
महान्तं विभान्तं गुहान्तं गुणान्तं
सुखान्तं स्वयंधाम् रामं प्रपद्ये।।
(शंकराचार्यकृत स्तुति)

जो शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप हैं, जो स्वयं सर्वथा निराधार हैं, पर सभी गुणों के आधार हैं। संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं, सदा स्वयं प्रकाश-स्वरूप हैं और सबसे महान् हैं तथा प्रत्येक प्राणी के हृदय गुहा में विराजमान रहते हैं, अनन्त गुणों की सीमा हैं और सर्वोपरि सुखस्वरूप हैं, उन स्वप्रकाशस्वरूप भगवान् श्रीराम की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।



राम सेवक

अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए।।
(10(21–22), अरण्यकाण्ड, मानस)

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनि के वचन सुनकर श्रीराम जी मन में बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

श्री ब्रह्मा जी एवं श्री इन्द्र जी



ब्रह्मा जी

बंदउँ बिधि पद रेनु भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल बिष बारुनी।।
(14(च) बालकाण्ड, मानस)

मैं ब्रह्मा जी के चरण-रज की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने भवसागर बनाया है, जहाँ से एक ओर संतरूपी अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु निकले और दूसरी ओर दुष्ट मनुष्यरूपी विष और मदिरा उत्पन्न हुए।



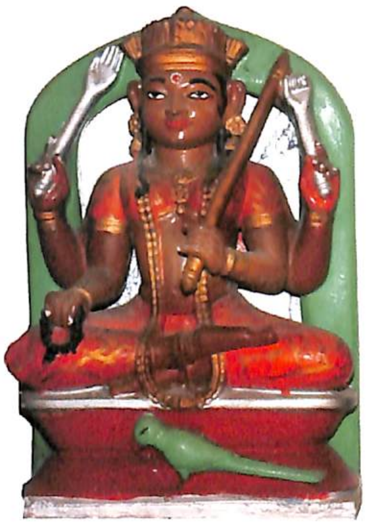
इन्द्र जी

अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस।।
जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम।।
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप।।
(112(1–2), लंकाकाण्ड, मानस)

छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकी जी सहित परम कुशल प्रभु श्री कोसलाधीश की शोभा देखकर देवराज इन्द्र मन में हर्षित होकर स्तुति करने लगे – शोभा के धाम, शरणागत को विश्राम देने वाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष और बाण धारक प्रबल प्रतापी भुजदण्डों वाले श्रीरामचन्द्र जी की जय हो !

श्री अग्नि जी एवं श्री यमराज जी

श्री अग्नि जी



ततो माहिष्मतीं नाम पुरीं स्वर्गपुरीप्रभाम्।
सम्प्राप्तो यत्र सांनिध्यं सदासीद् वसुरेतसः।।
तुल्य आसीन्नृपस्तस्य प्रभावाद् वसुरेतसः।
अर्जुनों नाम यत्राग्निः शरकुण्डेशयः सदा।।
(7–8 / 31, उत्तरकाण्ड, वा. रामायण)

घूमते-घूमते वह स्वर्गपुरी अमरावती के समान सुशोभित होनेवाली माहिष्मती नामक नगरी में जा पहुँचा, जहाँ अग्निदेव सदा विद्यमान रहते थे। उन अग्निदेव के प्रभाव से वहाँ अग्नि के ही समान तेजस्वी अर्जुन नामक राजा राज्य करता था, जिसके राज्यकाल में कुशास्तरण से युक्त अग्निकुण्ड में सदा अग्निदेव निवास करते थे।



श्री यमराज

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई।।
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई।।
(251(5–6), अयोध्याकाण्ड, मानस)

सीताजी समेत दोनों भाइयों (श्रीराम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी बुरी तरह पछतायी। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिये रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता।



मारीच

सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही।।
बिनु फर बान तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा।।

(209(3–4), बालकाण्ड, मानस)

यह समाचार सुनकर मुनियों का शत्रु क्रोधी मारीच अपने सहायकों को लेकर दौड़ा। श्रीरामजी ने बिना फलवाला बाण उसको मारा, जिससे वह सौ योजन के विस्तारवाले समुद्र के पार जा गिरा।



श्री शेषनाग जी।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा।।

(72(3–4), बालकाण्ड, मानस)

तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते हैं और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत् का पालन करते हैं, तप के बल से ही शम्भु (रूद्ररूप से जगत् का) संहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते हैं।

श्री मरीचि जी

अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः।।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः।
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः।।

(19–20 / 70, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

'ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का कारण अव्यक्त है – ये स्वयम्भू हैं। नित्य, शाश्वत और अविनाशी हैं। उनसे मरीचि की उत्पत्ति हुई। मरीचि के पुत्र कश्यप हैं, कश्यप से विवस्वान् का और विस्वान् से वैवस्वत मनु का जन्म हुआ।



श्री वरुण जी एवं श्री वायु जी

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला।
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें।।

(रावण ने कहा –) वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण से उत्पन्न हुआ?



श्री शिव जी

शंखेन्द्वाभमतीयवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमकं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीऽयं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरम्।।

(2, लंकाकाण्ड, मानस)

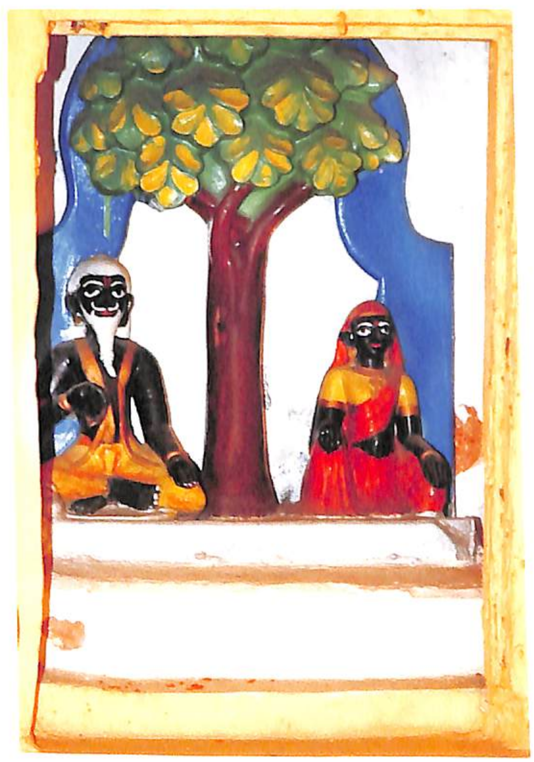


शंख और चन्द्रमा की-सी कान्ति के अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्रवाले, काल के समान (अथवा काले रंग के) भयानक सर्पों का भूषण धारण करने वाले, गंगा और चन्द्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप समूह का नाश करनेवाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करनेवाले पार्वती पति वन्दनीय श्री शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

श्री मनु शतरूपा जी

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा।।
दंपति धरम आचरण नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका।।

(141(1–2), बालकाण्ड, मानस)



स्वायम्भुव मनु और (उसकी पत्नी) शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई,
इन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं।



अन्तः - अहाता नं. 4



श्री सत्यनारायण जी

सत्यनारायणस्यैतद् व्रतं सम्यग् विधानतः।
कृत्वा सम्यक् सुखं भुक्त्वा परे मोक्षमवाप्नुयात्।।

(14, रेवाखण्ड 5, स्कन्दपुराण)

पूरे विधिविधान से श्रीविष्णु स्वरूप श्रीसत्यनारायण जी के व्रत करके, सभी प्रकार का सुख भोगकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ततः स्तुत्वा गृहं गच्छेत् सत्यनारायणं स्मरन्।
एवं कृते मनुष्याणां वांछासिसिद्धर्भवेद् ध्रुवम्।।22।।

(रेवाखण्ड 5, स्कन्दपुराण)

उसके बाद घर जाकर, स्नान कर श्रीसत्यनारायण को स्मरण करे। ऐसा करने से मनुष्यों को मनोवांछित ध्रुव अभिलाषा की सिद्धि होती है।



श्रीमकरध्वज जी

मकरेण चिह्नितो ध्वजो यस्य, कामदेवः। इत्यमरः।
1/1/27।। यथा, माघे/3/61/
"शरीरिणा जैत्रशरेण यत्र
निशंकमूवे मकरध्वजेन।।"
रससिन्दूरविशेषः। 561/III, शब्दकल्पद्रुमः।।



श्री धर्मपाल जी

धृष्टिजर्यन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्।।
(3.7. बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र, जो अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे।



श्रीअर्थदेव जी

आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कबित दोष गुन बिबिध प्रकारा।।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।।
(8(8–11), बालकाण्ड, मानस)

नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलंकार, अनेक प्रकार की छन्दरचना, भावों और रसों के अपार भेद और कविता के भाँति-भाँति के गुण-दोष होते हैं। इनमें से काव्य सम्बन्धी एक भी बात का ज्ञान मुझमें नहीं है, यह मैं कोरे कागज पर लिखकर (शपथपूर्वक) सत्य-सत्य कहता हूँ।।



श्रीश्रद्धादेव जी

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।।
(2, बालकाण्ड, मानस)

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्रीशंकर जी की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।।

ऋषि श्री मार्कण्डेय जी

मार्कण्डेयोऽथ मौद्गल्यो वामदेवश्च कश्यपः।
कात्यायनो गौतमश्च जाबालिश्च महायशाः।।
एते द्विजाः सहामात्यैः पृथग्वाचमुदीरयन्।
वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठं राजपुरोहितम्।।
(3–4/67, अयोध्याकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

मार्कण्डेय, मौंगल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि – ये सभी ब्राह्मणश्रेष्ठ राजपुरोहित वशिष्ठ जी के सामने बैठकर मन्त्रियों के साथ अपनी अलग–अलग राय देने लगे।





श्रीलक्ष्मी नारायण जी

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी।।
राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी।।
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा।।
एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू।।
(272(5–8), अयोध्याकाण्ड, मानस)

फिर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के चरणों की वन्दना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्रीराम जी राजा हों, जानकी जी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनन्द की सीमा होकर – फिर समाज सुखपूर्वक बसे और श्रीराम जी भरत जी को युवराज बनावें। हे देव ! इस सुखरूपी अमृत से सींचकर सब किसी को जगत् में जीने का लाभ दीजिये।।

श्रीलक्ष्मी दामोदर जी

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधानपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः।।9।।
(दशम स्कन्ध/अ. 21, श्रीमद्भागवत)

अरी गोपियों ! यह वेणु पुरुषजाति का होने पर भी पूर्वजन्म में न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हम गोपियों की अपनी सम्पत्ति दामोदर के अधरों की सुधा स्वयं ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि हम लोगों के लिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा। इस वेणु को अपने रस से सींचनेवाली ह्रदिनियाँ आज कमलों के मिस रोमांचित हो रही हैं और अपने वंश में भगवत्प्रेमी सन्तानों को देखकर श्रेष्ठ पुरुषों के समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखों से आनन्दाश्रु बहा रहे हैं।





श्री चतुर्भुज जी

भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी।।

(191(1–4), बालकाण्ड, मानस)

दीनों पर दया करनेवाले, कौसल्याजी के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरनेवाले उनके अद्भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गयी। नेत्रों को आनन्द देनेवाला मेघ के समान श्यामशरीर था; चारों भुजाओं में अपने (विशिष्ट) आयुध (धारण किए हुए) थे; (दिव्य) आभूषण और वनमाला पहने थे; बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले भगवान् प्रकट हुए।

श्री भक्त ध्रुव जी

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि प्रिय आपू।।
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू।।
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

(25(3–6), बालकाण्ड, मानस)



नारद जी ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, (हरि को हर प्यारे हैं) और आप (श्रीनारद जी) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की, जिससे प्रह्लाद भक्तशिरोमणि हो गये। ध्रुव जी ने ग्लानि से (विमाता के वचनों से दुःखी होकर सकामभाव से) हरिनाम को जपा और उसके प्रताप से अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया। हनुमान जी ने पवित्र नाम का स्मरण करके श्रीरामजी को अपने वश में कर रखा है।



श्री कश्यप जी

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा।।

(122(3–4), बालकाण्ड, मानस)

वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं।



श्री वशिष्ठ जी

इक्ष्वाकूलां हि सर्वेषां पुरोधाः परमागतिः।
न चातिक्रमितुं शक्यं वचनं सत्यवादिनः।।
(3/58, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

समस्त इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियों के लिये पुरोहित वशिष्ठ जी ही परमगति हैं। उन सत्यवादी महात्मा की बात को कोई अन्यथा नहीं कर सकता।।



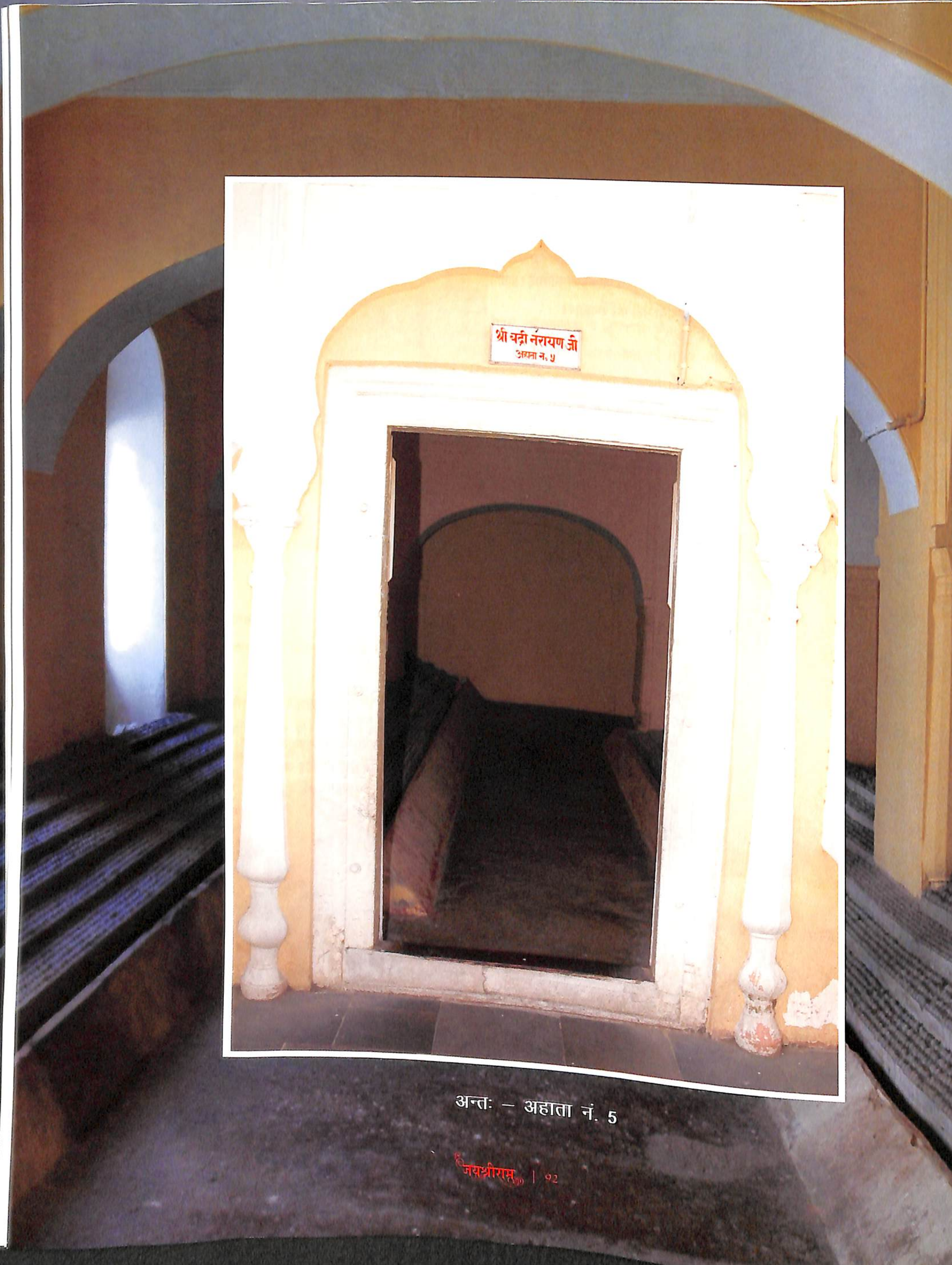
श्री जनक जी

तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः।
प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः।।
(4/71, बालकाण्ड, वा.रामा.)

उनके मिथिनामक एक पुत्र हुआ। मिथि के पुत्र का नाम जनक हुआ। ये ही हमारे कुल में पहले जनक हुए हैं (इन्हीं के नाम पर हमारे वंश का प्रत्येक राजा 'जनक' कहलाया है)। जनक से उदावसु का जन्म हुआ।

दोहा – प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गंभीर।।
कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा।।
(215(1–2), बालकाण्ड, मानस)

मन को प्रेम में मग्न जान राजा जनक ने विवेक का आश्रय लेकर धीरज धारण किया और मुनि के चरणों में सिर नवाकर गदगद् (प्रेमभरी) गम्भीर वाणी से कहा – "हे नाथ ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक मुनिकुल के आभूषण हैं या किसी राजवंश के पालक ? अथवा जिसका वेदों ने 'नेति' कहकर गान किया है कहीं वह ब्रह्म तो युगल रूप धरकर नहीं आया है ?



अन्तः – अहाता नं. 5



श्रीमाता वैष्णव देवी जी

डॉ. कर्ण सिंह जी द्वारा मंदिर का उद्घाटन रविवार, 12 अक्टूबर, 1975 को संपन्न हुआ।

या पार्वते जनपदे हिमशैल-धाम्नि
कूट-त्रयान्वित-गिरि तु गुहान्तराले।
कूटैस्त्रिभि हि असित-लोहित-शुक्लवर्णे,
भातीहसावतु जनं कृपया त्रिकूटा।।
(श्रीत्रिकूटा-स्तुति)

जो भगवती पार्वत–जनपद के पास हिमालय पर्वत-माला में तीन शिखरों (कूटों) से युक्त पर्वत की गुफा के मध्य कृष्ण, लोहित (रक्त) तथा शुक्ल (श्वेत) : इन तीन पिण्डियों के रूप में शोभा देती है, वह त्रिकूटा भगवती हमारी रखा करें।।

श्रीबदरीश महिमा

यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि।
विलीयन्ते क्षणादेव सिंहदृष्ट्वा मृगा इव।।
धर्माधर्मान् विजित्याथ बदरीशं विभुंहरिम्।
दृष्ट्वा मुक्तिमुपयान्ति विनायासं षडानन।।
विना ज्ञानेन योगेन तीर्थाटनपरिश्रमैः।
एकेन जन्मना जन्तुः कैवल्यं पदमश्नुते।।
(स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड, बदरिकाश्रम भा. अध्याय 5)

भगवान् शिवजी ने कहा – षडानन ! जिन बदरी-तीर्थ के स्वामी भगवान् श्रीहरि का दर्शन करने मात्र से बड़े-बड़े पातक क्षणभर में उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार सिंह को देखकर मृग आदि पलायित हो जाते हैं, उनके दर्शनमात्र से मनुष्य धर्म और अधर्म पर विजय प्राप्त कर अनायास ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तथा ज्ञान और योग-साधन के बिना ही उनका दर्शन करनेमात्र से केवल एक जन्म में ही प्राणी मोक्ष प्राप्त कर लेता है।



श्री कृपाचार्य जी

ततोऽधिजग्मुः सर्वे ते धनुर्वेदं महाराथाः।
धृतराष्ट्रान्मजाश्चैव पाण्डवाः सह यादवैः।।
वृष्णयश्च नृपाश्चान्ये नानादेशसमागताः।।
(महाभारत, आदिपर्व 129)

धृतराष्ट्र के महारथीपुत्र, पाण्डव तथा यादव सबने कृपाचार्य से धनुर्वेद का अध्ययन किया। वृष्णीवंशी तथा भिन्न-भिन्न देशों से आए हुए अन्य नरेश भी उनसे धनुर्वेद की शिक्षा लेते थे। कृपाचार्य कौरवों के कुलगुरु भी कहलाये और दीर्घजीवी हैं अर्थात् शास्त्रों के अनुसार वे आज भी जीवित हैं।

श्री द्रोणाचार्य जी



ततः समभवद् द्रोणः कलशेतस्यधीमतः।
अध्यगीष्टसवेंदाश्च वेदांगनिचसर्वशः।।38।।
(आदिपर्व 12, महाभारत)

तब उन बुद्धिमान् महर्षि को उस कलश (द्रोण) से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वह द्रोण से जन्म लेने के कारण द्रोण नाम से ही विख्यात हुआ। उसने सम्पूर्ण वेदों और वेदांगों का अध्ययन किया।



श्री राजा बलि जी

सिबि दधीचि बलि जो कुछ भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा।।
(29(7), अयोध्याकाण्ड, मानस)

राजा शिवि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा।



श्रीगन्धर्व विद्याधर जी

तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागण
गर्न्धवविद्याधरसिद्धचारणाः।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः।।19!!
(अष्टम स्कन्ध / अ. 20 / श्रीमद्भागवत)

उस समय आकाश में स्थित देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण – सभी लोग राजा बलि के इस अलौकिक कार्य तथा सरलता की प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्द से उनके ऊपर दिव्य पुष्पों की वर्षा करने लगे।



श्री राजा धर्मकेतु जी

सन्नतेः सुनीयस्तस्यापि सुकेतुस्तस्माच्च धर्मकेतुयज्ञे।।
(19 / 8 अ. / 4 ब. / विष्णुपुराण)

काश्यपवंश में अलर्क के पुत्र सन्नति हुए। सन्नति के सुनीथ, सुनीथ के सुकेतु, सुरेतु से धर्मकेतु पैदा हुए। ये विष्णु भक्त थे।



श्री राजा चित्रकेतु जी

आसीद्रजा सार्वभौमः सूरसेनेषु वै नृप।
चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुक्मही।।10।।
(षष्ठस्कन्ध / अ. 14 / श्रीमद्भागवत)

प्राचीनकाल की बात है, शूरसेन देश में चक्रवर्ती सम्राट् महाराज चित्रकेतु राज्य करते थे। उनके राज्य में पृथ्वी स्वयं ही प्रजा की इच्छा के अनुसार अन्न-रस दे दिया करती थी।



श्री महाराजा हरिश्चन्द्र जी

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सनकहहिं बखानी।।
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं।।
(47(5–6), अयोध्याकाण्ड, मानस)

वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक दूसरे से बखान करते हैं। कोई एक इसमें भरत जी की सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं)।



श्री महाराजा दिलीप जी

दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान्।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत्।।
(8 / 42, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

महातेजस्वी दिलीप ने बहुत-से यज्ञों का अनुष्ठान तथा तीस हजार वर्षों तक राज्य किया।



श्री श्रवण कुमार जी

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई।।
भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा।।
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।।
(154(4–6), अयोध्याकाण्ड, मानस)

राजा को अंधे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) के शाप की याद आ गयी। उन्होंने सब कथा कौशल्या को कह सुनायी। उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गये और कहने लगे कि श्रीराम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा ।



श्री भक्त प्रह्लाद जी

होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रह्लाद सुजस बिस्तारा।।

(121(8), बालकाण्ड, मानस)

फिर दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह रूप धारण करके वध किया और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया।



श्री कुबेर जी

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माच्चिद् दारचौर्यं त्वया कृतम्।।

(22/22, सुन्दरकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

'तू तो बड़ा शूरवीर बनता है, कुबेर का भाई है और तेरे पास सेनाएँ भी बहुत हैं, फिर श्रीराम को छल से दूर हटाकर क्यों तूने उनकी स्त्री की चोरी की है ?;



श्री बद्रीनारायण जी एवं श्री महामाया जी (योगमाया)

बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस।।

(25, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण कर और श्रीराम जी के युगल चरणों को, जिनकी ब्रह्मा और महेश भी वन्दना करते हैं, हृदय में धारणकर वह (स्वयंप्रभा) बदरीकाश्रम को चली गयी।



योगमाया

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्क वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसाः कृपणान् वृथा ।।
इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनि बहुनामा बभूव ह ।।

(12–13 / 10, स्कन्ध, 6 अध्या., श्रीमद्भागवत)

'रे मूर्ख ! मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा ? तेरे पूर्वजन्म का शत्रु तुझे मारने के लिये किसी स्थान पर पैदा हो चुका है ! अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकों की हत्या न किया कर।; कंस से इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँ से अन्तर्धान हो गयीं और पृथ्वी के अनेक स्थानों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हुईं।



अन्तः – अहाता नं. 6

श्री शिव परिवार

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि।।
(25, बालकाण्ड, मानस)

(राम) राम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्रीशिवजी ने अपने हृदय में यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्र में से इस 'राम' नाम को (सार रूप से चुनकर) ग्रहण किया है।



श्री वामदेव जी

बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिव्य आसन सबहि सब सन लही असीस।।
(320, बालकाण्ड, मानस)

राजा ने वामदेव आदि ऋषियों की प्रसन्न मन से पूजा कीं सभी को दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया।



श्री केवट जी

नाविक उवाच

क्षालयामि तव पादपंकजं
नाथ दारुद्वषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणचूर्णिमस्ति ते
पादयोरिति कथा प्रथीयसी।।
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा
पश्चात्परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन
स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः।।
(3–4 / 6, बालकाण्ड, अध्यात्म रामायण)

हे नाथ ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणों में कोई मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है। (आपने अभी शिला को स्त्री बना दिया, फिर) शिला और काष्ठ में भेद ही क्या है ?अतः नौका पर चढ़ाने से पूर्व मैं आपके चरणकमलों को धोऊँगा। इस प्रकार आपके चरणों को दूषणरहित करके मैं आपको श्रीगंगा जी के उस पार ले जाऊँगा। नहीं तो हे विभो ! आपके चरण-रज के स्पर्श से यदि मेरी नौका सुन्दर युवती हो गयी तो मेरे कुटुम्ब की आजीविका ही मारी जायेगी। ऐसा कहकर केवट ने उनके चरण धोये और फिर गंगा के पार ले गया। वहाँ से राम और लक्ष्मण के सहित श्रीविश्वामित्र जी मिथिलापुरी को चले।



श्री भरत जी

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु।।
(207, अयोध्याकाण्ड, मानस)

हे भरत ! यह तो तुमने बहुत ही अच्छा किया, यही तुम्हारे लिये उचित था। श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रेम होना ही संसार में समस्त सुन्दर मंगलों का मूल है।।



श्री चतुर्भुज नारायण जी

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा।।
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा।।
(9(26–27), अरण्यकाण्ड, मानस)

श्रीराम ने मुनि को बहुत प्रकार से जगाया, पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभु के ध्यान का सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्रीराम जी ने अपने राजरूप को छिपा लिया और उनके हृदय में अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया।



श्री विश्वकर्मा जी

धनदस्य सुतः श्रीमान् वानरो गन्धमादनः।
विश्वकर्मा त्वजनयन्नलं नाम महाकपिम्।।
(12/17, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

तेजस्वी वानर गन्धमादन कुबेर का पुत्र था। विश्वकर्मा ने नल नामक महान् वानर को जन्म दिया।

श्री देवशिल्पी प्रजापति विश्वकर्मा (त्वष्टा)

विश्वकर्मन् नमस्तेऽस्तु विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
अपवर्गोऽसि भूतानां पंचानां परतः स्थितः।।
(महाभारत, शान्ति. 47/85)

'हे विश्वकर्मन् ! यह सम्पूर्ण विश्व आपकी रचना है, आप समस्त विश्व के आत्मा और उत्पत्ति स्थान हैं तथा पाँचों भूतों से अतीत होने के कारण नित्यमुक्त हैं, आपको मेरा नमस्कार है।'



श्री अग्निदेव जी

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें।
दोहा – तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ।।
(188(6), 189, बालकाण्ड, मानस)

मुनि के भक्तिसहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरू (हविष्यान्न खीर) लिये प्रकट हुए। तदनन्तर अग्निदेव सारी सभा को समझाकर अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्द में मग्न हो गये, उनके हृदय में हर्ष समाता न था।



श्री सोमनाथ जी

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये।।1।।
(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

जो अपनी भक्ति प्रदान करने के लिये अत्यंत रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़) में दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तक का आभूषण है, उन ज्योतिर्लिंगस्वरूप भगवान् श्री सोमनाथ की शरण में जाता हूँ।



श्री महाकालेश्वर

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहासुरेशम्।।3।।

संत जनों को मोक्ष देने के लिए, जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन) में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नाम से विख्यात महादेव जी को मैं अकाल मृत्यु से बचने के लिए नमस्कार करता हूँ।

(संदर्भ – द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)



श्री ऊँकारेश्वर जी

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृ वसन्त –
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे।।4।।

(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

जो सत्पुरुषों को संसारसागर से पार उतारने के लिये कावेरी और नर्मदा के पवित्र संगम के निकट मान्धाता के पुर में सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ऊँकारेश्वर का मैं स्तवन करता हूँ।



श्री वैद्यनाथ जी

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने
सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराधितपादपमं
श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि।।5।।

(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

जो पूर्वोत्तर दिशा में चिताभूमि (वैद्यनाथ-धाम) के भीतर सदा ही गिरिजा के साथ वास करते हैं, देवता और असुर जिनके चरण-कमलों की आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथ को मैं प्रणाम करता हूँ।



श्री भीमशंकर जी

यं डाकिनीशाकिनिकासमाणे
निषेव्यमाकं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धे
तं शंकरं भक्तहितं नमामि।।10।।

जो डाकिनी और शाकिनीवृन्द में प्रेतों द्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशंकर को मैं प्रणाम करता हूँ।

(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)



श्री रामेश्वर जी

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं नमामि।।9।।
(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

जो भगवान श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा ताम्रवर्णी और सागर के संगम में अनेक बाणों द्वारा पुल बाँधकर स्थापित किये गये, उन श्रीरामेश्वर को मैं नियत से प्रणाम करता हूँ।



श्री नागेश्वर

याम्ये सदंगे नगरेऽतिरम्ये
विभूषितांग विविधैश्च भोगैः।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं
श्रीनागनाथं शरखं प्रपद्ये।।6।।

जो दक्षिण के अत्यन्त रमणीय सदंग नगर में विविध भोगों से सम्पन्न होकर सुन्दर आभूषणों से भूषित हो रहे हैं, एकमात्र जो ही सद्भक्ति और मुक्ति को देने वाले हैं, उन प्रभु श्रीनागनाथ की मैं शरण में जाता हूँ।
(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)



श्री विश्वनाथ जी

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं।।
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लक्ष्छन एहू।।
(103(5–6), बालकाण्ड, मानस)

शिवजी के चरण कमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे श्रीरामचन्द्र जी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्री शिवजी के चरणों में निष्कपट (विशुद्ध) प्रेम होना यही रामभक्त का लक्षण है।

श्री विश्वनाथ

सानन्दमानन्दवने वसन्त –
मानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।।
वाराणसीनाथमनाथनाथं
श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये।।11।।

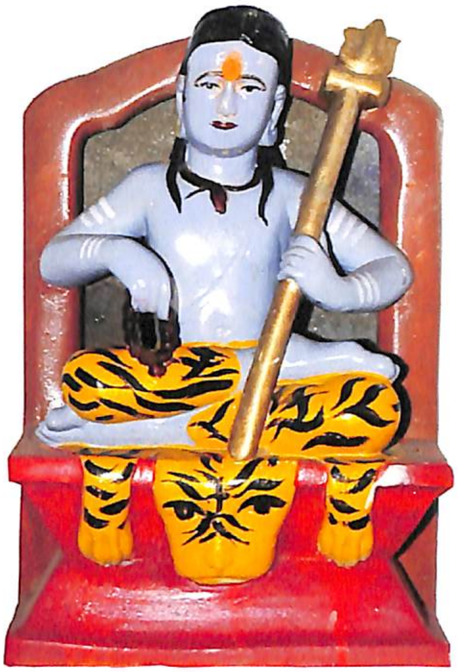
जो स्वयं आनन्दकर हैं और आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशी क्षेत्र) में वास करते हैं, जो पापसमूह के नाश करने वाले हैं, उन अनाथों के नाथ काशीपति विश्वनाथ की शरण में जाता हूँ।
(संदर्भ : द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

श्री त्र्यम्बकेश्वर

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं
गोदावरीतीरपवित्रदेशे।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं
प्रयाति त त्र्यम्बकमीशमीडे।।8।।

जो गोदावरीतट के पवित्र देश में सह्यपर्वत के विमल शिखर पर वास करते हैं, जिनके दर्शन से तुरंत ही जातक नष्ट हो जाते हैं, उन श्री त्र्यम्बकेश्वर का मैं स्तवन करता हूँ।

(संदर्भ : द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)





श्री केदारनाथ जी

महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं
सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः
केदारमीशं शिवमेकमीडे।।7।।

(द्वादशज्योतिर्लिंगस्तोत्रम्)

जो महागिरि हिमालय के पास केदारशृंग के तट पर सदा निवास करते हुए मुनीश्वरों द्वारा पूजित होते हैं तथा देवता, असुर, यक्ष और महान् सर्प आदि भी जिनकी पूजा करते हैं, उन एक कल्याणकारक भगवान् केदारनाथ का मैं स्तवन करता हूँ।।



अन्तः – अहाता नं. 7



श्रीधर्मराज जी

"मुञ्च मां साधु धर्मज्ञ यावदेनं निहन्म्यहम्।
नहि कश्चिन्मया दृष्टो बलवानपि जीवति।।

(30/22, उत्तरकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

(मृत्यु ने कहा –) धर्मज्ञ (धर्मराज जी)! आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं इसे अवश्य मार डालूँगा। जिसे मैं देख लूँ, वह कोई बलवान् होने पर भी जीवित नहीं रह सकता।।



श्रीदेवर्षि नारदजी

नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपे।।

(25(3), बालकाण्ड, मानस)

नारद जी ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं, (हरि को हर प्यारे हैं) और आप (श्रीनारदजी) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं।

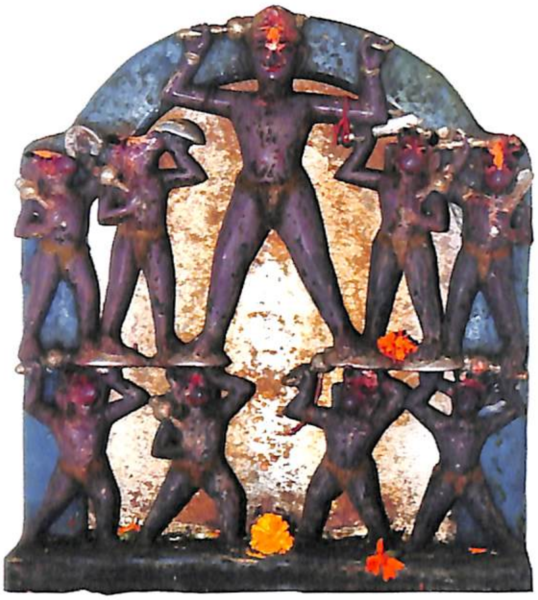


श्रीधर्मराज गंधर्व जी

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा धर्मराजः प्रतापवान्।
अब्रवीत् तत्र तं मृत्युं त्वं तिष्ठैनं निहन्म्यहम्।।
ततः संरक्तनयनः क्रुद्धो वैवस्वतः प्रभुः।
कालदण्डममोघं तु तोलयामास पाणिना।।

(32–33/22, उत्तरकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

मृत्यु की यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराज ने उससे कहा – 'तुम ठहरो, मैं ही इसे मारे डालता हूँ'। तदनन्तर क्रोध से लाल आँखें करके सामर्थ्यशाली वैवस्वत यम ने अपने अमोघ कालदण्ड को हाथ से उठाया।



श्री यमदूत जी

ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्तथा।।
ततस्ते सचिवास्तस्य यथाकामं यथाबलम्।
अयुध्यन्त महावीराः स च राजा दशाननः।।

(30/21, उत्तरकाण्ड, वा.रामा.)

यमदूतों के आक्रमण करने पर रावण के वे महावीर मन्त्री तथा स्वयं राजा दशग्रीव भी वृक्षों, पर्वत-शिखरों तथा यमलोक के सैकड़ों प्रासादों को उखाड़कर उनके द्वारा पूरी शक्ति लगाकर इच्छानुसार युद्ध करने लगे।



श्री धर्मराज जी

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रतापवां –
स्ततो हि वैवस्वत उच्यते बुधैः।
समेन धर्मेण चरन्ति ताः प्रजा –
स्ततस्तवेहेश्वर धर्मराजता।।41।।

(वनपर्व, 297 अ., महाभारत)

(सावित्री ने कहा. –) देवेश्वर ! आप विवस्वान् (सूर्य) के प्रतापी पुत्र हैं, इसलिये विद्वान आपको वैवस्वत कहते हैं। आप समस्त प्रजा के साथ समतापूर्वक धर्मानुसार आचरण करते हैं, इसलिये आप धर्मराज कहलाते हैं।



श्रीचित्रगुप्त जी

अपीच्यवेषं स्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम्।
दक्षिणे लेखनींचैव दधद्वामेच पत्रकम्।
पिंगलश्मश्रुकेशाक्षं चित्रगुप्तं विभावयेत।।

(श्रीतत्त्वनिधि)

चित्रगुप्त देवता का वेष बहुत ही सुन्दर है, स्वरूप भी सुन्दर है। अतः देखने में ये बहुत प्रिय लगते हैं। इनके दाहिने हाथ में लेखनी और बायें हाथ में लेखा-जोखा का कागज़ है। इनके श्मश्रु और केश पीतवर्ण हैं।



श्री साक्षी गोपाल जी

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमागतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च।।
(2, श्रीविष्णुसहस्रनाम्)



श्रीगजग्राहजी

तं वीच्य पीडितमज्ञः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोञ्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां
हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्।।33।।
(अष्टमस्कन्ध / अ. 4 / श्रीमद्भागवत)

जब भगवान् ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुड़ को छोड़कर कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्र के साथ ही ग्राह को भी बड़ी शीघ्रता से सरोवर से बाहर निकाल लाये। फिर सब देवताओं के सामने ही भगवान् श्रीहरि ने चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्र को छुड़ा लिया।



श्रीमान्धाता जी

धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः।
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः।।
(25 / 70, बालकाण्ड, वा.रामा.)

धुन्धुमार से महातेजस्वी महारथी युवनाश्व का जन्म हुआ। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुए, जो समस्त भूमण्डल के स्वामी थे।



श्रीदशरथ जी

अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।।
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारंगपानी।।
(187(7–8), बालकाण्ड, मानस)

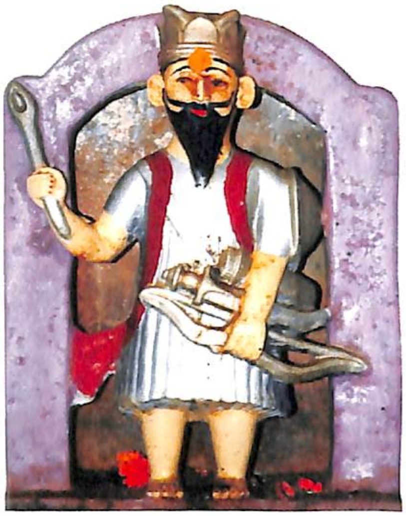
अवधपुरी में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नाम के राजा हुए, जिनका नाम वेदों में विख्यात है। वे धर्मधुरन्धर, गुणों के भण्डार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् की भक्ति थी, और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी।।

श्रीबालिजी

दोहा – कह बाली सुनु भीरू प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ।।
(7, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

बालि ने कहा – हे भीरू ! (डरपोक) प्रिये ! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं। कदाचित् वे मुझे मारेंगे भी तो मैं सनाथ हो जाऊँगा (परमपद पा जाऊँगा)।

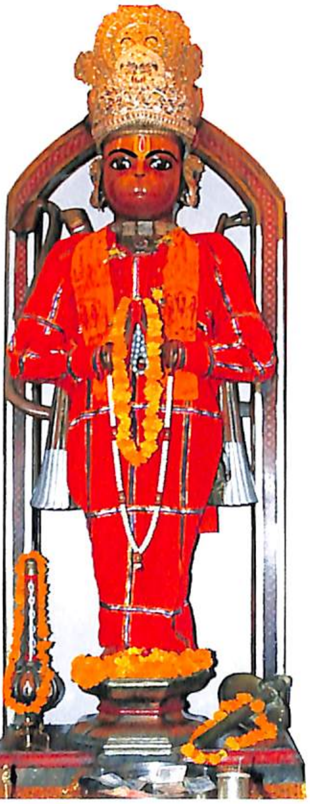




श्री भीष्म पितामह जी

श्री भीष्म उवाच –
इति मतिरूपकल्पिता वितृष्णा
भगवति सात्वतपुंगवे विभूम्नि।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं
प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः।।31।।
(प्रथम स्कन्ध, अध्याय 9, श्रीमद्भागवत)

श्री भीष्म जी ने कहा – अब मृत्यु के समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करने से अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंश शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूप में स्थित रहते हुए ही कभी विहार करने की लीला करने की इच्छा से प्रकृति को स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है।



श्री हनुमान जी

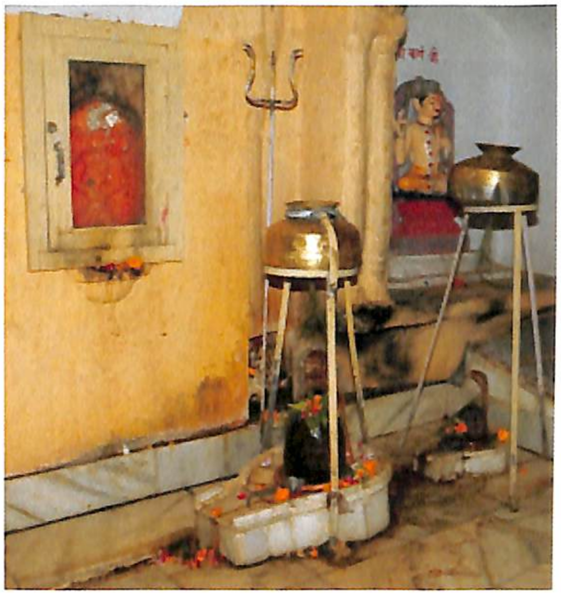
दोहा तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।4।।
(4, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

तब हनुमान् जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि को साक्षी देकर परस्पर दृढ़ करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अग्नि की साक्षी देकर प्रतिज्ञापूर्वक उनकी मैत्री करवा दी)।

श्री रामदूत : हनुमान जी

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये।।
(33, रामरक्षास्तोत्रम्)

जिनकी मन के समान गति और वायु के समान वेग है, जो परम जितेन्द्रय और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं, उन पवननन्दन वानराग्रगण्य श्रीरामदूत की मैं शरण लेता हूँ।



शिवलिंग

सुनि कपीस बटु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए।।
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
(1(5–6), लंकाकाण्ड, मानस)

श्रीराम जी के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत-से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आये। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। (फिर श्री रघुनाथ जी बोले –) शिवजी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है।



श्री कर्ण जी

कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाधिरथः पिता।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया।।9।।
(भीष्मपर्व, 122वाँ अ., महाभारत)

(भीष्मपितामह ने कहा) – (हे कर्ण !) वत्स ! तुम राधा के नहीं, कुन्ती के पुत्र हो। तुम्हारे पिता अधिरथ नहीं हैं। महाबाहो ! तुम सूर्य के पुत्र हो। मैंने नारद जी से तुम्हारा परिचय प्राप्त किया था।

जानामिसमरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम्।।14।।
(भीष्म पर्व, 122वाँ अध्याय, महाभारत)

(भीष्म पितामह ने कहा) – (हे कर्ण !) मैं जानता हूँ, तुम्हारा पराक्रम समरभूमि में शत्रुओं के लिए दुःसह है। तुम ब्राह्मण-भक्त, शूरवीर तथा दान में उत्तम निष्ठा रखनेवाले हो।



श्री जटायु जी

दोहा – अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।।
(32, अरण्यकाण्ड, मानस)

अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृद्धराज जटायु श्रीहरि के परमधाम को चला गया। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी (दाहकर्म आदि सारी) अंतिम क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से कीं।



श्री सम्पाती जी

एहि बिधि कथा कहहिं बहुभाँती। गिरि कंदरा सुनी संपाती।।
बाहेर होइ देखि बहु कीसा। मोहि अहार दीन्ह जगदीसा।।

(26(1–2), किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

इस प्रकार जाम्बवान् बहुत प्रकार से कथाएँ कह रहे हैं। इनकी बातें पर्वत की कन्दरा में सम्पाती ने सुनीं। बाहर निकलकर उसने बहुत-से वानर देखे। तब वह बोला – जगदीश्वर ने मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भेज दिया !

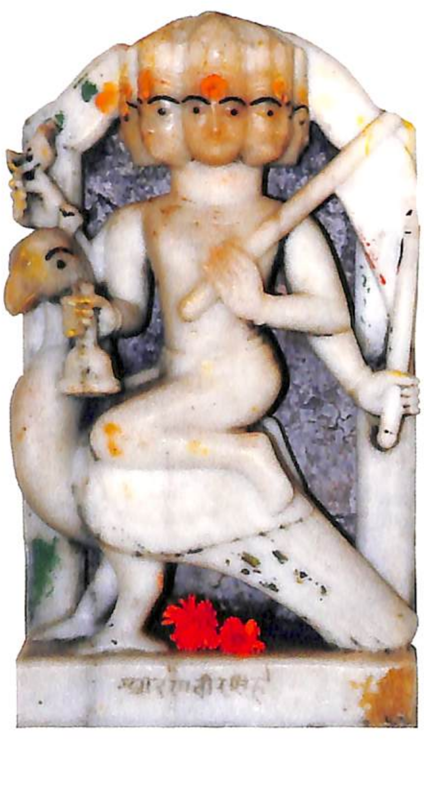


श्रीदक्ष प्रजापति जी

लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला।।
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक।।

(59(5–6), बालकाण्ड, मानस)

शिवजी भगवान् हरि की रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।



श्री कार्तिकस्वामी जी

तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुरु समर जेहिं मारा।।
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना।।
छंद – जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा।।
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं।।

(102(7–8), बालकाण्ड, मानस)

तब छः मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिक) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बड़े होने पर) युद्ध में तारकासुर को मारा। वेद, शास्त्र और पुराणों में स्वामिकार्तिक के जन्म की कथा प्रसिद्ध है और सारा जगत् उसे जानता है। षडानन के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिये मैं वृषकेतु (शिवजी) के पुत्र का चरित्र संक्षेप से ही कहा है। शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को जो स्त्री-पुरुष कहेंगे और गायेंगे, वे कल्याण के कार्यों और विवाहादि मंगलों में सदा सुख पावेंगे।

अहाता नं. 8



भगवान श्री सूर्यनारायण

यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः।।
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम्।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः।।
त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु।।
(69–71, 109, मार्कण्डेयपुराण)

जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं; वनस्पति, वृक्ष और औषधियाँ जिनके स्वरूप हैं; ब्राह्मी, वैश्णवी और माहेश्वरी – ये त्रिधा शक्तियाँ जिनका वपु हैं; 'भानु' जिनका स्वरूप है, वे तेजस्वी भुवनभास्कर सूर्यनारायण (सब पर सदा) प्रसन्न हों।

"स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" – जो चैतन्य सत्ता इस पुरुष में है तथा आदित्य में है, वह एक ही है।। तैत्तिरीयोपनिषद् 10/4) आदित्यो ब्रह्म इत्यादेशः (छान्दोग्योपनिषद् 3/19/1)

आदित्य की ब्रह्मरूप में उपासना करने का विधान। भगवान् सूर्य, जिनके वंश में राम पुत्र के रूप में अवतरित हुए हैं, भला वे क्यों न आनन्दमग्न होकर आत्मविस्मृत होंगे ? इसीलिये वे एक माह तक अयोध्या में ही टिके रहकर निःसीम आनन्द की अनुभूति करते रहे –

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोई
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ।।
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना।।
(195(1), बालकाण्ड, मानस)

महीने भर का दिन हो गया। इस रहस्य को कोई नहीं जानता। सूर्य अपने रथसहित वहीं रुके रहे, फिर रात किस तरह होती। यह रहस्य किसी ने नहीं जाना। सूर्यदेव (भगवान् श्रीरामजी का) गुणगान करते हुए चले। यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुए अपने–अपने घर चले ।।



श्री सूर्य भाद्रपद मास जी

विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रौ वरुणोऽर्य्यमा।
विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः।।
इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः।
उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मांसैर्द्वादशभिःक्रमात्।।
(17–18/31, आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्, ब्रह्मपुराण)

विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये द्वादश आदित्य पृथक् रूप से व्यवस्थित हैं। ये बारह महीनों में क्रमशः उत्थान करते हैं।

श्री सूर्य आश्विन मास जी

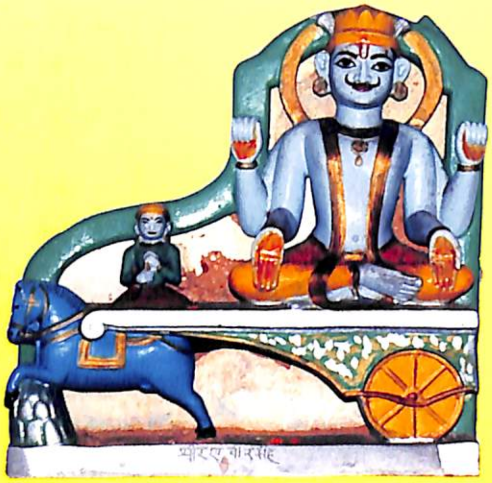


विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा।
विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान् स्मृतः।।19।।
पर्ज्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रौष्ठसंज्ञके।
इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके।।20।।
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः।
माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने।।21।।
(आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्, 31 अ., ब्रह्मपुराण)

विष्णु चैत्र में, अर्यमा वैशाख में, विवस्वान् ज्येष्ठ में, अंशुमान् आषाढ़ में, वरुण भाद्रपद में, इन्द्र आश्विन में, धाता कार्तिक में, मित्र अगहन में, पूषा पौष में, भग माघ में और त्वष्टा फाल्गुन में तपते हैं।



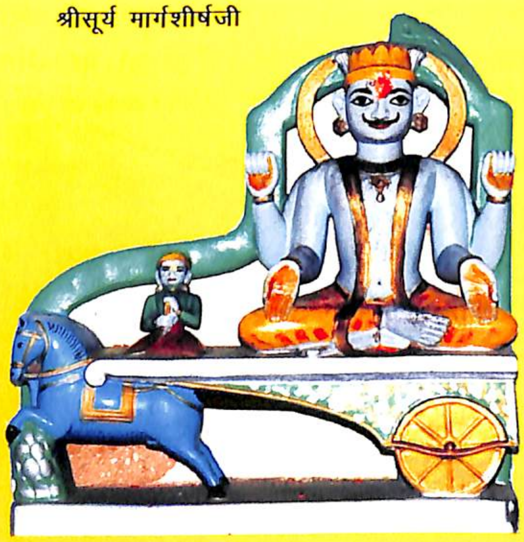
श्रीसूर्य कार्तिकमास जी



श्रीसूर्य मार्गशीर्षजी

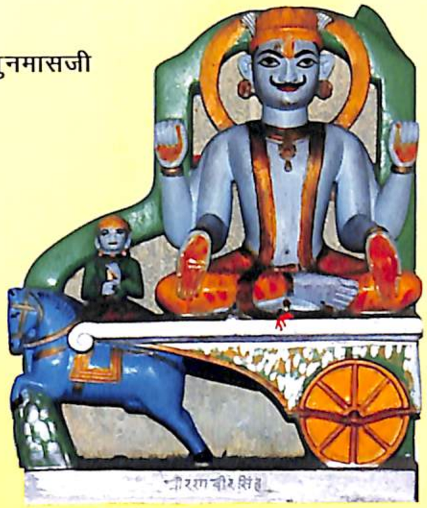


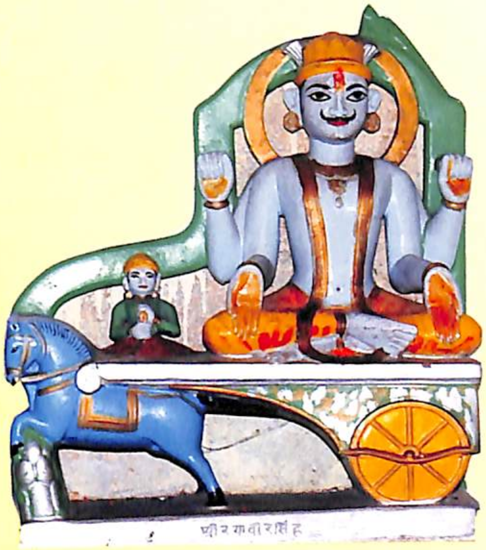
श्रीसूर्य पोषमासजी



श्रीसूर्य माघमासजी

श्रीसूर्य फाल्गुनमासजी





श्रीसूर्य चैत्रमासजी



श्रीसूर्य वैशाखमासजी



श्रीसूर्य ज्येष्ठमासजी



श्रीसूर्य आषाढमासजी



श्रीसूर्य श्रावणमासजी



विष्णुस्वरूप भगवान् शालिग्राम



शालिग्राम भगवान् विष्णु के साक्षात् मूर्तिमान् विग्रह माने जाते हैं। अन्य प्रतिमा-विग्रहों की तरह इनमें प्राण-प्रतिष्ठादि संस्कारों की आवश्यकता नहीं होती तथा पूजा आदि में भी आवाह्न-विसर्जन आदि नहीं किया जाता, क्योंकि इस शिला में भगवान् विष्णु नित्य सन्निहित रहते हैं। अतः इनके पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, चन्दन, पुष्प, तुलसी आदि उपचारों से स्तुति-प्रदक्षिणा तथा प्रणाम तक ही पूजा की विधि है, विसर्जन की नही। रात्रि में शयन कराने के बाद पुनः प्रातःकाल जागरण कराया जाता है। इनके साथ तुलसी का नित्य संयोग माना जाता है। केवल शयनकाल के अतिरिक्त ये तुलसी से कभी अलग नहीं रहते। अतः शयन कराने के बाद तुलसीपत्र को शालिग्राम-शिला के ऊपर से हटाकर पार्श्व में रख दिया जाता हैं यदि कई शालिग्राम हों तो सबसे उतारकर एक वस्त्र में शिलाओं के पीछे रखने की परम्परा है।

भगवान् विष्णु पतिव्रता वृन्दा के शाप से शालिग्राम शिला के रूप में परिवर्तित हो गये और वृन्दा भी तुलसी के रूप में परिवर्तित हो गयी। हिमालय के मध्य भाग में शालिग्राम शिखर है। यह शिखर शालिग्राम-पर्वत तथा मुक्तिनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् विष्णु के गण्डस्थल से समुद्भूत गण्डकी नाम की पवित्र नदी प्रवाहित होती है, जिसके गर्भ में शालिग्राम-शिलाएँ प्रचुर रूप में प्राप्त होती है। ये शिलाएँ साक्षात नारायणस्वरूप हैं और आकृति-भेद से इनमें दामोदर, वासुदेव, नृसिंह, वामन, लक्ष्मी-नारायण आदि अवतारों की भी स्थिति मान्य है। इनमें भी चक्रांकित शालग्राम की विशेष प्रतिष्ठा होती है। शास्त्रों के अनुसार जहाँ शालिग्राम-शिला होती है, वहाँ सभी तीर्थ और भुक्ति-मुक्ति भी स्थित रहते हैं और कोई दोष, पाप तथा अशुभ, अदृष्ट प्राणी नहीं प्रविष्ट होते हैं। शालिग्राम का चरणोदक सभी तीर्थों से अधिक पवित्र माना जाता है।

शालिग्राम सम संख्या में ही पूजे जाते हैं, किंतु दो शालिग्रामों की एक साथ पूजा नहीं की जाती। शालिग्राम की पूजा विषम संख्या में नहीं करनी चाहिये; किंतु विषम में भी एक शालिग्राम की पूजा का विधान है।

शालिग्राम की पूजा में स्त्रियों का अधिकार नहीं है, वे किसी ब्राह्मण के द्वारा पूजा करा सकती हैं। शालिग्राम के साथ द्वारावती शिला तथा तुलसीदल रखने का विधान है। शूल के समान नुकीले, विकृत मुखवाले तथा पिंगल वर्ण के शालिग्राम दूषित माने जाते हैं। इनकी पूजा से अनिष्ट की सम्भावना होती है, अतः पूजा के लिये इनका संग्रह नहीं करना चाहिये।

प्राचीन परम्परा के अनुसार भगवान् शालिग्राम पर श्रीचक्र या श्रीयन्त्र निर्माण करने से उनकी महिमा और भी बढ़ जाती है। उनके दर्शनमात्र से सभी पाप नष्ट होकर समस्त तीर्थों और देवताओं के दर्शन का फल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि शास्त्रानुसार उनमें सभी तीर्थ, सभी देवता, ऋषि, मुनि और पवित्र पर्वत, समुद्रादिकों का भी वास रहता है तथा लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वती आदि शक्तियाँ एवं साक्षात् त्रिपुरसुन्दरी शिव के साथ और लक्ष्मी भगवान् विष्णु के साथ निवास करती हैं। सभी ऋद्धि-सिद्धियाँ भी अनुग्रह कर उपासक को प्राप्त हो जाती हैं। व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालिग्राम की सन्निधि में करने से विशेष फलप्रद होते हैं। विष्णुस्वरूप शालिग्राम की महिमा अनन्त है। धार्मिक विश्वासों के अनुसार जो पुरुष अपने मृत्युकाल में शालिग्राम के जल का पान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विष्णु लोकगामी होता है। उसे मुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोग के बन्धनों से छूटकर भगवान् श्रीहरि के चरणों में लीन हो जाता है।

पद्म, स्कन्द, वाराह, ब्रह्मवैवर्त, देवीभागवत तथा भविष्यादि पुराणों में गण्डकी-क्षेत्र और शालिग्राम-शिला का विस्तार से माहात्म्य, लक्षण तथा पूजा आदि की विधि पर प्रकाश डाला गया है।

विधिपूर्वक शालिग्राम के चरणोदक बनाने तथा उसके पान करने की अत्यधिक महिमा है। तदनुसार ताम्रपात्र में तुलसी और शालिग्राम को रखकर एक छोटे से शंख में तीथ-जल के द्वारा घण्टा बजाते हुए तथा पुरुष सूक्त के मन्त्रों का पाठ करते हुए शालिग्राम भगवान् का अभिषेक किया जाता है। शंख के जल में किंचित् श्वेत चन्दन तथा सुगन्धित द्रव्य भी रहना चाहिये। इसीलिये शालिग्राम-शिलोदक को अष्टांग कहा गया है। इसके श्रद्धापूर्वक पान करने से सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा अपमृत्यु एवं अकाल मृत्यु का भय नहीं होता। साथ ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु-सायुज्य को प्राप्त होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

विष्णुप्रिया तुलसी

भक्तों एवं उपासकों के लिये जितने भगवान् विष्णु आराध्य एवं श्रद्धेय हैं, उतनी ही भगवती तुलसी भी श्रद्धेया, पूज्या एवं वन्दनीया हैं। वे भी श्रीदेवी के समान भगवान् की अनादिकाल से नित्य सहचरी रही हैं। इसलिये वे विष्णुप्रिया, विष्णुकान्ता एवं केशवप्रिया आदि नामों से अभिहित होती हैं। वे भगवान् के नित्यधाम – गोलोक में उनके साथ देवी के रूप में स्थित रहती हैं और लीला-विभूति में वे श्रीराधिका के समान ही भगवान् की लीलाओं में सहयोग प्रदान करती हैं तथा लीला के प्रसंग में ही वे वृन्दावन में एक गोपी के रूप में अवतरित होती हैं और पुनः किंचित् काल तपस्या कर वृन्दावनविहारी के रूप में अवतीर्ण हुए श्रीकृष्णस्वरूप नारायण को प्राप्त कर लेती हैं। इस सम्बन्ध में पुराणों में अनेक आख्यान मिलते हैं और कल्पभेद से उनमें कई स्थानों पर घटना-चक्रों में भी कुछ भिन्नता प्राप्त होती है। किन्हीं पुराणों के अनुसार वे कुछ कालतक जालन्धर की पत्नी रहती हैं और किन्हीं के अनुसार शंखचूड़ की। अन्तर्भाव से उनकी श्रद्धा भगवान् नारायण में ही सदा रही और उन्हीं को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये तप भी करती रहीं। इनके यद्यपि अन्य कई नाम हैं, किंतु 'वृन्दा' इनका दूसरा प्रमुख नाम रहा है और जब इन्होंने गोपी-भाव के शरीर का परित्याग कर दिया तो ये वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गयीं और वृन्दा एवं तुलसी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। इस प्रसंग में इनकी मनःस्थिति को जानते हुए भगवान् विष्णु ने जो अनुग्रह कर इन्हें अपनी पत्नी बनाने के लिये छल का अभिनय किया, उससे रुष्ट होकर इन्होंने उन्हें शिला बनने का शाप दिया और स्वयं गण्डकी नदी के रूप में परिवर्तित हो गयीं तथा उन्हें अपने हृदय में धारण कर लिया। इस प्रकार भी भगवान् नारायण का देवी तुलसी से अनन्य सम्बन्ध स्थापित हो गया।

भगवान् शालिग्राम साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और तुलसी के बिना उनकी कोई भी पूजा सम्पन्न नहीं हो सकती। उनके स्नान, नैवेद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प-माल्यादि अलंकरण और राजभोग आदि में उनकी सर्वत्र उपस्थिति आवश्यक होती है। अनेक प्रकार के दिव्य उपकरण – मिष्ठान्न, सुस्वादु व्यंजन आदि भी वे तुलसी के बिना स्वीकार नहीं करते। इसलिये भगवान् नारायणस्वरूप शालिग्राम की उपासना में नैवेद्य आदि के अर्पण के समय मन्त्रोच्चारण और घण्टानाद के साथ-साथ तुलसीपत्र का समर्पण भी उपासना का मुख्य अंग माना जाता है और प्रतिमा चाहे विष्णु, राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, लक्ष्मी-नारायण आदि किसी की हो, उनके हाथों में भी तुलसी अर्पित की जाती है और उनकी प्रतिनिधि के रूप में एक शालिग्राम की उपस्थिति तथा तुलसी का सान्निध्य आवश्यक होती है। यह उनके विष्णु-प्रियात्व का प्रमुख प्रमाण है। साथ ही तुलसी की प्रायः अन्य सभी देवताओं और देवियों की उपासना में पुष्प आदि के साथ इनका सम्मिश्रण होने से उस देवता की भी प्रसन्नता शीघ्र प्राप्त हो जाती है।

आज भी विष्णुवल्लभा तुलसी की स्मृति की स्मृति में कार्तिक मास में सर्वत्र उनका जन्म एवं विवाह का उत्सव मनाया जाता है। विशेषकर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि से लेकर पूर्णिमा तक विवाह-मण्डप की रचना, विवाह-कौतुक और शालिग्राम की शिला के साथ तुलसी के निवास स्थान के पास सभी प्रकार की चित्र-रचना कर षोडशोपचार-पूजनपूर्वक श्रृंगारोत्सव मनाया जाता है। उस दिन श्रद्धालु लोग उपवास करते हैं। व्रतोद्यापन में जप, हवन तथा ब्राह्मण-भोजन आदि भी होता है। उस दिन विष्णु स्तोत्रों के साथ-साथ तुलसी के कवच आदि पंचांगों के स्तोत्रों का पाठ भी किया जाता है और विवाह आदि के मंगल-गीत तथा मंगल-आरती आदि भी सम्पन्न की जाती है। इससे अनन्त पुण्य की प्राप्ति होती है। तुलसी के माहात्म्य पर भी प्रायः सभी पुराणों में तथा पांचरात्रों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इनके अनुसार जहाँ तुलसी के पौधे होते हैं या तुलसी-वन होता है, वह स्थान या उद्यान महान् तीर्थ हो जाता है और

वहाँ यमकिंकरों का प्रवेश नहीं होतां जहाँ भगवान् की तुलसी-मंजरियों से पूजा होती है, वहाँ के लोग भोक्ष के भागी होते हैं और उपासकों को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता।

तुलसीकाननं चैव गृहे यस्यावतिष्ठते।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिंकराः।।
तुलसीमंजरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम्।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी भवेन्नरः।।

तुलसी-वृक्ष में मूल से लेकर उसकी छाया तक में सभी देवता तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं और वहाँ सभी कल्याण-मंगलों का अधिष्ठान होता है। देवता भी तुलसी के सन्निधान से मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं। जल में तुलसीदल मिलाकर जो व्यक्ति स्नान करता है, उसे सभी तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है। जलपूर्ण घड़े में तुलसी डालकर उस पवित्र जल से भगवान् शालिग्राम या अन्य देवताओं का अभिषेक करने से तो देवताओं तथा भगवान् को ऐसी तृप्ति होती है जो अमृतपूर्ण हज़ारों घड़ों से भी सम्भव नहीं है –

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्।।
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेद्धरेः।
या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः।।
(ब्र.वै., प्रकृ. 21/39–40)

तुलसी-वन में या तुलसी-वृक्ष के समीप किया गया कोई भी अनुष्ठान, जप, तप तथा रामायण, गीता, भागवत आदि के पाठ सभी कामनाओं को पूर्ण करते हुए उसके हृदय को भी शुद्ध कर शुद्ध ज्ञान की उत्पत्तिपूर्वक उसे भगवत्प्राप्ति एवं मुक्ति के भी योग्य बना देते हैं। इसी प्रकार तुलसी-वृक्ष के नीचे की मृत्तिका की भी अपार महिमा कही गयी है। उसके मस्तक में लगाने से सभी पाप दूर हो जाते हैं और सभी प्रकार के कल्याणों की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तुलसी की माला का भी बहुत महत्त्व है। वैष्णवों में उसकी कण्ठी भी पहनने का नियम है। इससे यमदूतों का भय नहीं होता। भगवान् विष्णु के तथा उनके सभी अवतारों के मन्त्र तुलसीमाला पर जपने से सहज सिद्धि प्रदान करते हैं। वैसे अन्य भी देवी के मन्त्र और सात्त्विक मन्त्र तथा नाम-मन्त्र भी तुलसी की माला पर जपे जाते हैं।

बाह्य परिक्रमा

श्री शेषशायी भगवान् विष्णु जी

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।



यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।।
नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उस धाम सदा छीरसागर सयन।।
मंगलाचरण (6), सो. (4); बालकाण्ड, मानस

जिनकी माया के वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य-जगत् सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके केवल चरण ही भवसागर से तरने की इच्छावालों के लिये एकमात्र नौका हैं, उन समस्त कारणों से पर (सब कारणों के कारण और सबसे श्रेष्ठ) राम कहानेवाले भगवान् हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

जो नील कमल के समान श्यामवर्ण हैं, पूर्ण खिले हुए लाल कमल के समान जिनके नेत्र हैं और जो सदा क्षीरसागर में शयन करते हैं, वे भगवान् (नारायण) मेरे हृदय में निवास करें।

श्रीगणेश जी

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोई सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि।।

(100, बालकाण्ड, रामचरितमानस)

मुनियों की आज्ञा से शिवजी और पार्वती जी ने गणेश का पूजन किया, मन में देवताओं को अनादि समझकर कोई इस बात को सुनकर शंका न करे (कि गणेश जी तो शिव-पार्वती की सन्तान हैं, अभी विवाह से पूर्व ही वे कहाँ से आ गये)।





श्री भरत जी

परे भूमि नहिं उठत उठाए बर करि कृपासिंधु उर लाए।।
स्यामल गात रोम भर ठाढ़ें। नव राजीव नयन जल बाढ़े।।
छप्पय – राजीव लोचन स्त्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम ह्रदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी।।
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरू सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।

(4.6, उत्तरकाण्ड, मानस)

भरत जी पृथ्वी पर पड़े हैं, उठाये उठते नहीं। तब कृपासिंधु श्रीराम जी ने उन्हें जबर्दस्ती उठाकर ह्रदय से लगा लिया। उनके साँवले शरीर पर रोएँ खड़े हो गयें नवीन कमल के समान नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं के) जल की बाढ़ आ गयी। कमल के समान नेत्रों से जल बह रहा है। सुन्दर शरीर में पुलकावली (अत्यन्त) शोभा दे रही है। त्रिलोकी के स्वामी प्रभु श्रीराम जी छोटे भाई भरत जो को अत्यन्त प्रेम से ह्रदय से लगाकर मिले। भाई से मिलते समय प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती। मानो प्रेम और श्रृंगार शरीर धारण करके मिले और श्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हुए।



श्रीशत्रुघ्न जी

जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।

(196(8), बालकाण्ड, मानस)

जिनके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है, उनका वेदों में प्रसिद्ध 'शत्रुघ्न' नाम है।

श्रीनृसिंह जी

छं. – धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अंतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं।।
(80(2), लंकाकाण्ड, मानस)

वे राक्षसों के गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं और उनकी अंतड़ियाँ निकालकर गले में डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो प्रह्लाद के स्वामी श्रीनृसिंह भगवान् अनेकों शरीर धारण करके युद्ध के मैदान में क्रीड़ा कर रहे हों।





श्रीराधाकृष्ण जी

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं
द्विधाभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः ...... ।
(राधिकातापनीयोपनिषद्)

ये श्रीराधिकाजी और रससिन्धु श्रीकृष्ण की देह एक है। केवल लीला के लिये ही ये दो स्वरूपों में प्रकट हैं, जैसे शरीर अपनी छाया से सुशोभित हो।

त्वं मे प्राणाधिका राधे तव प्राणाधिकोऽप्यहम्।
न किंचिदावयोर्भिन्नमेकांग सर्वदैव हि।।
(ब्र.वै., कृष्ण 6/67)

राधे ! तुम मेरी प्राणाधिक् हो, मैं भी तुम्हारा प्राणाधिक् हूँ। हम दोनों में कुछ भी भेद नहीं है, हम सदा ही एक हैं।



श्रीवराह जी

बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता।।
(121(7), बालकाण्ड, मानस)

वे युद्ध में विजय पाने वाले विख्यात वीर थे। इनमें से एक (हिरण्याक्ष) को भगवान् ने वराह का शरीर धारण करके मारा।



श्रीवामन जी

ह्रीं श्रीं श्रीवामनाय नमः।

(3/376, वृद्धहारीत)

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।

उभय घटी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ।।

(29, किष्किन्धाकाण्ड, मानस)

बलि के बाँधते समय प्रभु इतने बढ़े कि उस शरीर का वर्णन नहीं हो सकता, किन्तु मैंने दो ही घड़ी में दौड़कर (उस शरीर की) सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं।।



श्रीमहालक्ष्मी जी

कान्त्या कांचनसंनिभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै –

ईस्तोत्क्षिप्तहिख्मयामृतघटैरासिच्यमानां श्रियम्।

बिभ्राणां वरमष्जयुग्मभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां

क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बलसितां वन्देऽरविन्दस्थिताम्।।

(8/4, शारदातिलक)

जिनकी कान्ति सुवर्ण-वर्ण के समान प्रभायुक्त है और जिनका हिमालय के समान अत्यन्त ऊँचे उज्ज्वल वर्ण के चार गजराज अपनी सूँड़ों से अमृत-कलश के द्वारा अभिषेक कर रहे हैं जो अपने चार हाथों में क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा और दो कमल धारण किये हुई हैं, जिनके मस्तक पर उज्ज्वल वर्ण का भव्य करीट सुशोभित है, जिनके कटि-प्रदेश पर कौशेय (रेशमी) वस्त्र सुशोभित हो रहे हैं। ऐसी कमल पर स्थित भगवती लक्ष्मी की मैं वन्दना करता हूँ।

नवदुर्गा जी

ब्रह्मोवाच :

प्रथम शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्।।

पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।

सप्तम कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्।।

नवमं सिद्धिदात्री च नव दुर्गाः प्रकीर्तिता।

उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना।।

(3–5, देवी कवच, दुर्गासप्तशती)



देवी की नौ मूर्तियाँ है।, जिन्हें 'नवदुर्गा' कहते है।। उनके पृथक्-पृथक् नाम बतलाये जाते हैं। प्रथम नाम शैलपुत्री है। दूसरी मूर्ति का नाम ब्रह्मचारिणी है। तीसरा स्वरूप चन्द्रघण्टा के नाम से प्रसिद्ध है। चौथी मूर्ति को कूष्माण्डा कहते हैं। पाँचवीं दुर्गा का नाम स्कन्दमाता है। देवी के छठे रूप को कात्यायनी कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि और आठवाँ स्वरूप महागौरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। नवीं दुर्गा का नाम सिद्धिदात्री है। ये सब नाम सर्वज्ञ महात्मा वेद भगवान् के द्वारा प्रतिपादित हुए हैं।



श्रीमत्स्य जी

मत्स्यादिभिवतारैरवतारवतावता सदा वसुधाम्।
परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतीऽहम्।।
5, षट्पदी

हे परमेश्वर ! मत्स्यादि अवतारों से अवतरित होकर पृथ्वी की सदा रक्षा करने वाले आपके द्वारा संसार के त्रिविध तापों से भयभीत हुआ मैं, रक्षा करने के योग्य हूँ।



श्रीकच्छप जी

सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहिं मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई।।
रघुबीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जाति परम सुहावनी।
धनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।।
(34(15–16),

सुन्दरकाण्ड, मानस)

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्पराज शेष जी भी सेना का बोझ नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (घबड़ा जाते) हैं और पुनः - पुनः कच्छप की कठोर पीठ को दाँतों से पकड़ते हैं। ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतों को गड़ाकर कच्छप की पीठ पर लकीर-सी खींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्रीरामचन्द्र जी का सुन्दर प्रस्थानयात्रा को परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सर्पराज शेषजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हों।



श्रीकश्यपजी

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता।।
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा।।
(122(3–4), बालकाण्ड, मानस)

वहाँ (उस अवतार में) कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, जो दशरथ और कौशल्या के नाम से प्रसिद्ध थे। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं।



श्रीविराट जी

मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं। बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं।।
उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका।।
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा।।
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।
सागर सूरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि विस्तारा।।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर।।
जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखउँ बरनि कवनि बिधि जाइ।।
एक एक ब्रह्मांड महुँ रहउँ बरष सत एक।
एहि विधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक।।

(79(ख), 2–8; 80 (क–ख) उत्तरकाण्ड, मानस)

मुझे देखकर श्रीरामजी मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुख में चला गया। हे पक्षिराज ! सुनिये, मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्मांडों के समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्माण्डों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एक बढ़कर थी। करोड़ों ब्रह्मा जी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि, असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखें जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मन में भी नहीं समा सकता था। वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाय ! मैं एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ वर्ष तक रहा। इस प्रकार मैं अनेक ब्रह्माण्ड देखता फिरा।



श्रीशिवजी

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।
दोहा – संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।।

(1(6–8), 2, लंकाकाण्ड, मानस)

शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया। फिर श्री रघुनाथ बोले – शिव के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है। जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकर जी से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है। जिनको शंकर जी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं; एवं जो शिवजी के द्रोही हैं और मेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं।

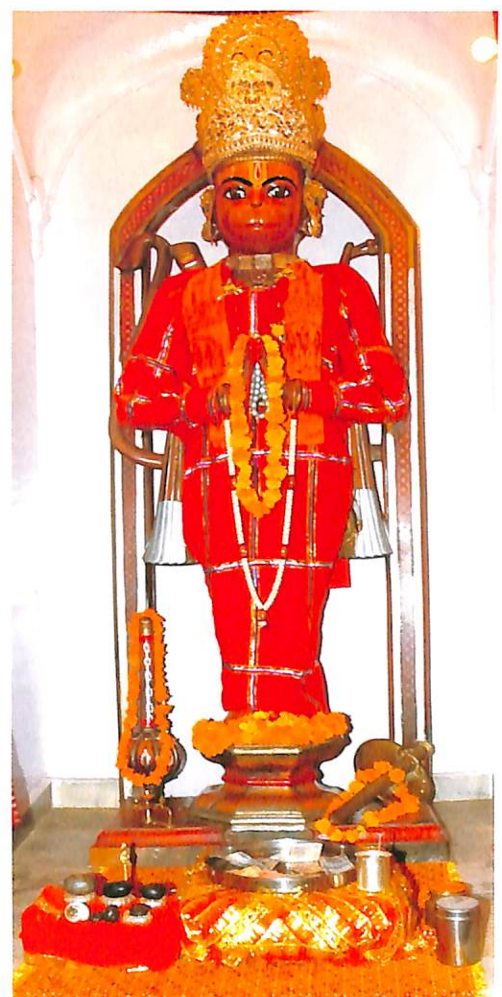


श्रीलक्ष्मी नारायण जी

एक बार करतल कर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना।।
छीन सिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा।।
(127(3–4), बालकाण्ड, मानस)

एक बार गान विद्या में निपुण मुनिनाथ नारद जी हाथ में सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागर को गये, जहाँ वेदों के मस्तकस्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्ततत्त्व) लक्ष्मी निवास भगवान् नारायण रहते हैं।

गीता मन्दिर



श्री हनुमान मन्दिर

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।
(17 बालकाण्ड, मानस)

मैं पवनकुमार श्री हनुमान् जी को प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टरूपी वन को भस्म करने के लिये अग्निरूप हैं, जो ज्ञान की धनमूर्ति हैं और जिनके हृदयरूपी भवन में धनुष-बाण धारण किये श्रीराम जी निवास करते हैं।

मन्दिर श्री वेदव्यास भगवान् एवं गायत्री माता जी

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु।।
(14(3), बालकाण्ड, मानस)

मैं चारों वेदों की वन्दना करता हूँ, जो संसार समुद्र के पार होने के लिये जहाज के समान हैं तथा जिन्हें श्रीरघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करते स्वप्न में भी खेद (थकावट) नहीं होता।

गायत्री माताजी

एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महानृषिः।
प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः।।
कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ।
प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां संध्यामुपास्य च।।
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रभवन्दताम्।।
(23–32 / 29, बालकाण्ड, वाल्मीकि रामायण)

उनके ऐसा कहने पर महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र जितेन्द्रिय भाव से नियमपूर्वक यज्ञ की दीक्षा में प्रविष्ट हुए। ये दोनों राजकुमार भी सावधानी के साथ रात व्यतीत करके सबेरे उठे और स्नान आदि से शुद्ध हो प्रातःकाल की संध्योपासना तथा नियमपूर्वक सर्वश्रेष्ठ गायत्रीमन्त्र का जप करने लगे। जब पूरा होने पर उन्होंने अग्निहोत्र करके बैठे हुए विश्वामित्र जी चरणों में वन्दना की।









5

श्रीरघुनाथ जी उपास्य एवं उपासना

श्रीरघुनाथ जी : उपास्य एवं उपासना

उपगम्य आसनम्—आसना इति उपासना। समीप जाकर बैठने का नाम 'उपासना' है। 'प्रतिमोपासना' – वेदादि शास्त्रों में बताया गया है। आराध्य का कोई प्रतीक, कोई प्रतिनिधि, कोई मूर्ति या कोई अंग स्थिर कर लेना पड़ता है। उसी की पूजा से उस उपास्य की उपासना करनी पड़ती है।

प्रतिमोपासना जहाँ व्यावहारिक है, वहाँ स्वाभाविक भी है। उपासना एक क्रिया का नाम है। संस्कृत साहित्य का यह एक महत्त्वपूर्ण शब्द है। 'उपासनम् उपासना' अर्थात् शास्त्रविधि के अनुसार उपास्यदेव के प्रति तैलधारा की भाँति दीर्घकाल तक चित्त की एकात्मता को उपासना कहते हैं। इस संदर्भ में उपासक, उपास्य और उपासना – ये तीन हमारे सामने प्रस्तुत हैं। उपास्य के स्वरूप-गुणादि में चित्त-वृत्ति का सतत प्रवाह करनेवाले को उपासक कहा जाता है। आत्मा ही उपास्या है, आत्मातिरिक्त कोई न उपास्य है और न कोई उपासक।

श्रीरघुनाथ जी के परमभक्त एवं उपासक – भगवान् सदाशिव हैं। यथा –

हस्तेऽक्षमाला हृदि कृष्णतत्त्वं
जिह्वाग्रभागे वररामन्त्रम्।
यन्मस्तके केशवपादतीर्थं
शिव महाभागवतं नमामि।।

अर्थात् जिनके हस्तकमल में रुद्राक्ष की माला है, हृदय में श्रीकृष्ण-तत्त्व विराजमान है, जिह्वा के अग्रभाग में निरन्तर सुन्दर राम-मंत्र है, जिनके मस्तक पर भगवान् नारायण के चरणकमलों से निकली गंगा विराजमान है, ऐसे महाभागवत, परम भक्त, उपासक श्री शिवजी को नमस्कार है।

भगवान् शंकर रामायण के आदि आचार्य हैं। उन्होंने रामचरित का वर्णन सौ करोड़ श्लोकों में किया है। श्रीशिवजी ने देवता, दैत्य और ऋषि-मुनियों में श्लोकों का समान बँटवारा किया तो हर एक के भाग में 33 करोड़, 33 लाख, 33 हजार, 333 श्लोक आयें कुल 99 करोड़, 99 लाख, 99 हजार, 999 श्लोक वितरित हुए। एक श्लोक शेष बच गया। देवता, दैत्य, ऋषि – ये तीनों एक श्लोक के लिए लड़ने लगे। यह श्लोक अनुष्टुप छंद में था। अनुष्टुप छंद में 32 अक्षर होते हैं। श्रीशिवजी ने प्रत्येक को 10–10 अक्षर वितरित किया तथा दो अक्षर शेष बचे, तब शिवजी ने कहा – ये दो अक्षर अब किसी को नहीं दूँगा। ये अक्षर मैं अपने कंठ में रखूँगा। ये दो अक्षर ही 'रा' और 'म' अर्थात् राम का नाम है, जो वेदों का सार है।

राम नाम अति सरल है, अति मधुर है, इसमें अमृत से भी अधिक मिठास है। यह अमरमंत्र है, शिवजी के कण्ठ तथा जिह्वा भाग में विराजमान है, इसीलिये जब सागर मन्थन के समय हलाहल पान करते समय शिवभक्तों में हाहाकार मच गया, तब भगवान् भूतभावन भवानीशंकर ने सबको सान्त्वना–आश्वासन देते हुए कहा –

श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजं
संजीवनी चेन्मसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः।।

(आनन्द रामा. जन्मकाण्ड 6/43)

भगवान् श्रीराम का नाम सम्पूर्ण मन्त्रों का बीच मूल है, वह मेरे सर्वांग में पूर्णतः प्रविष्ट हो चुका है, अतः हलाहल विष हो, प्रलयानल–ज्वाला हो या मृत्युमुख ही क्यों न हो, मुझे इनका किंचित् भी भय नहीं है। यह कहते हुए शिवजी 'विष' पान कर गये। वह विष अमृत बन गया। उसी दिन में उनका नाम 'नीलकण्ठ' पड़ गयां। यही नहीं, आज भी काशी में विराजमान भगवान् शिव मरणासन्न प्राणियों को मुक्ति दिलाने के लिये उनके कान में तारक मन्त्र – रामनाम का उपदेश देते हैं।

श्रीरामनाम अमृत रूप है, इसकी अमृतरूपता यों कही गयी है –

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं वाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।।

(रामचरित., किष्किन्धा, मं.शो. 2)

ब्रह्म (वेद) समुद्र से उत्पन्न, पापों का प्रकर्षनाशक अविनाशी, श्रीमान् शिवभगवान् के सुन्दर श्रेष्ठ मुखरूपी चन्द्रमा में सदा शोभायमान, भवरोग की औषधि, (सेवन में) सुखकर और श्रीजानकीजी के जीवनस्वरूप श्रीरामनाम रूपी अमृत को जो निरन्तर पीते है, वे पुण्यात्मा धन्य हैं। 'श्रीजानकीजीवनम्' – इस रामानामामृत से श्रीजानकीजी ने अपना जीवन बनाया है, अतः सबको उनसे इसकी रीति सीखनी चाहिए, वही श्रेष्ठ ज्ञान है।

श्रीराम के कथन 'मैं अधिक क्या कहूँ! मेरे प्रेमी भक्त मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तों का हृदय मैं स्वयं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और मैं उनके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता।

(मानस 9/4/64–71)

सनातन धर्म में देवोपासना के लिये प्रतिमा अथवा मूर्ति प्रतिष्ठा का विशेष महत्त्व है। मूर्तियों में देवत्व के आधान के लिये वैदिकी, तान्त्रिकी तथा मिश्र – ये तीन प्रकार की प्रतिष्ठाएँ विहित हैं। श्रीमद्भागवत (11.27.12) में भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से आठ प्रकार की प्रतिमाओं का निरूपण करते हैं –

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता।।

पाषाणमयी, दारुमयी, लौही–स्वर्ण आदि धातु से निर्मित, भित्ति आदि पर लिखित, उत्कीर्णित, फलक अथवा चित्रपट आदि पर चित्रित, बालुका निर्मित, मानसी तथा मणि आदि रत्ननिर्मित प्रतिमाएँ होती हैं।

प्रायः सभी आगम-ग्रन्थों तथा प्रतिष्ठा-ग्रन्थों में प्रतिष्ठा-महोत्सव के निमित्त मंदिर प्रांगण में भूतशुद्धि, भूशुद्धि, वास्तुपूजनपूर्वक स्वतन्त्र मण्डप निर्माण, पंच-भूसंस्कार, कुण्ड-वेदी-निर्माण, प्रतिष्ठा के लिये नान्दीश्राद्ध प्रतिमा का जलाधिवासन, वस्त्राधिवासन, अन्नाधिवासन, रत्नाधिवासन तथा रत्नोदक, फलोदक, भस्मोदक, इक्षुरसोदक और पंचामृत आदि के घंटों द्वारा अभिषेक, ग्रहयाग, आयुष्यहोम, देवताओं एवं ग्रहादि के हवन आदि के बाद प्रतिमा का मधुपर्क आदि से पूजन, शय्याधिवास, सर्वांगन्यासपूर्वक समस्त प्रतिमाओं की प्रतिष्ठान का विधान है। मूर्ति के प्रतिष्ठित हो जाने पर सांगोपांग सपरिवार यथासम्भव अधिकाधिक उपचारों से पूजन एवं अलंकारों से अलंकृत करने का विधान है। प्रतिष्ठा के बाद देवता के निमित्त सभी प्रकार के पूजोपरख, पार्षद और आयुधादि के धारण के बाद प्रतिदिन तीनों काल में पूजन-अर्चन तथा राजभोग की समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है, इसमें किसी भी दिन व्यवधान नहीं होना चाहिये। विशेष महोत्सवों पर विशेष रूप से आराधना, उपासना, शोभायात्रा तथा अनेक मांगलिक आयोजन करना चाहिये।

देवोपासना के लिये सनातन धर्म का एक सबल आधार मूर्तिपूजा है और इसका अंग होने के कारण मूर्तिप्रतिष्ठा भी उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसी कारण श्रीमद्भागवत महापुराण में स्वयं भगवान् की उक्ति है कि 'देवता की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करने से व्यक्ति

सार्वभौम सम्राट होता है और देवमन्दिर के निर्माण से तीनों लोकों का स्वामी होता है तथा विधिपूर्वक पूजा एवं उत्सवों से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और इन तीनों के समन्वित आचरण करने से वह मेरे तुल्य ही हो जाता है –

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम्।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्।।

(11.27.52)

आध्यात्मिकता की छत्रछाया में खींच लाने के लिये क्या यह स्वाभाविक और आवश्यक न था कि उस विश्वातीत निर्विकार अरूप सत्ता को लोकसंग्रह का कार्य करने वाले उत्तम, गुह्य एवं आध्यात्मिक अनुभव से सम्पन्न विद्वान् मनीषियों के द्वारा जन–साधारण के सामने दार्शनिक एवं बौद्धिक अर्थ से युक्त विभिन्न नामों और रूपों के माध्यम से इस प्रकार की सुन्दर मूर्तियों में प्रकट किया जाय कि जन-साधारण के मन में परमात्मा के प्रति उत्सुकतापूर्ण रुचि उत्पन्न हो जाय और वह उसके साथ अनिश्चय सम्पर्क स्थापित करने के लिये विकल हो उठे। उसके हृदय की गहराइयों में सुप्त भक्ति-भावना अँगड़ाई ले, और वह फिर कभी न सोने की सत्य शपथ ग्रहण कर जाग उठे।

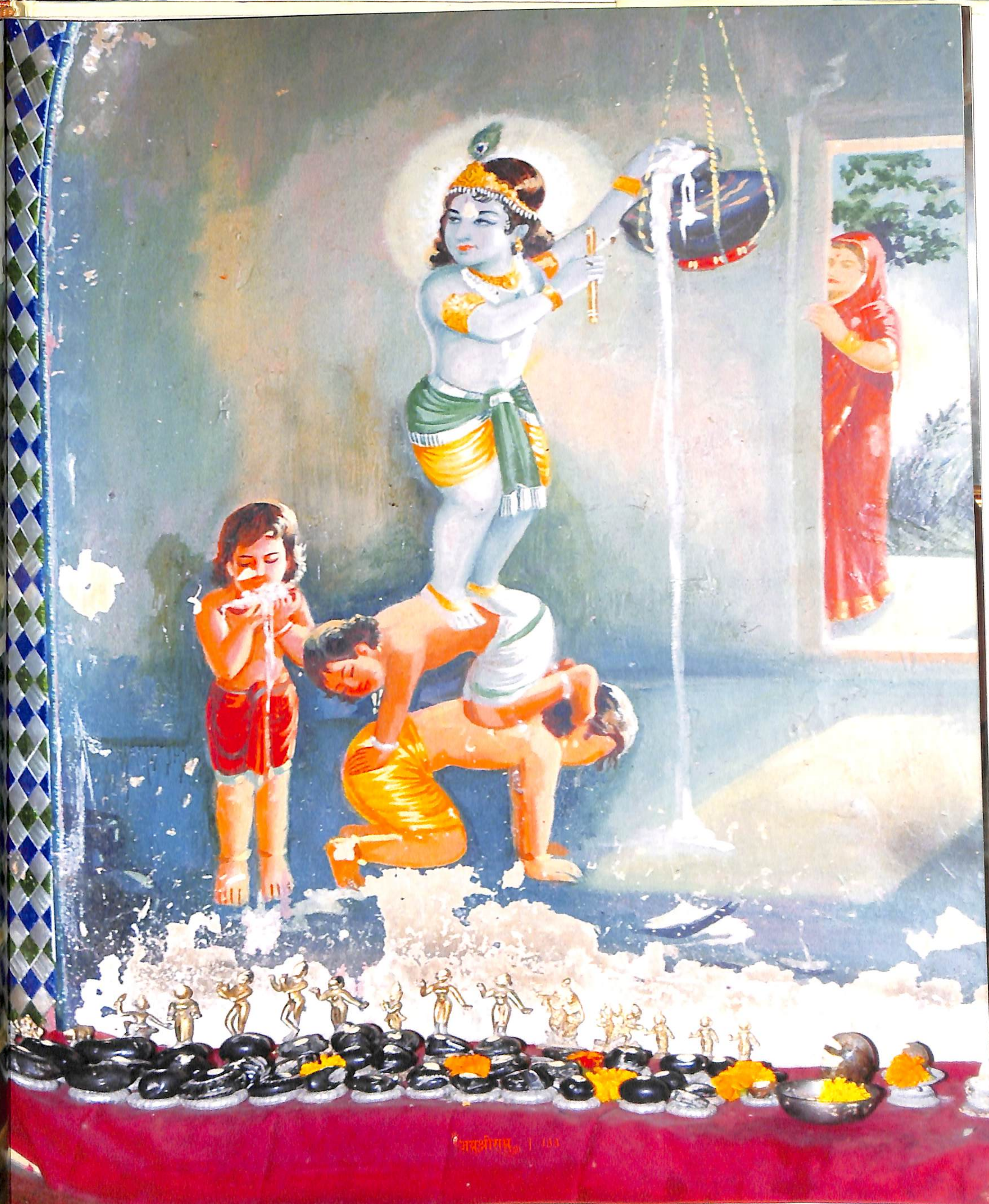
मूर्ति स्थापना के औचित्य के विषय में पाश्चात्य विद्वान Porphyry का यह वचन तुलना के योग्य है –

"Images and temples of the gods have been made from all antiquity for the sake of reminders to men. Their object is to make those, who draw near them, think of god thereby, or to enable them, after deasing from their work to address their pragers and rows to him. when any person gets an image or picture of a friend, he certainly does not believe that the friend is to be found in the image, or that his members exist inside the different part of the representation. His idea rather is that the honour, which he pays to his friend, find expression in the image. And while the sacrifies offered to the God do not bring them any honour, they are meant as a testimony to the goodwill and gratitude of the worshipperss."

इसका अभिप्राय यह है कि बहुत प्राचीनकाल से ही देवताओं की मूर्तियों और मन्दिरों के निर्माण का उद्देश्य मनुष्यों को देवताओं की याद दिलाना रहा है। उनका लक्ष्य यह है कि जो लोग उनके समीप पहुँचें, वे उनको देखकर ईश्वर पर विचार करें, या जब वे अपने काम-धंधों से छुट्टी पायें, तब ईश्वर की प्रार्थना करने और उसके सम्मुख प्रतिज्ञाएँ करने के लिये उन मन्दिरों में जायँ, क्योंकि जब किसी आदमी को अपने किसी मित्र की प्रतिमा या उसका चित्र प्राप्त होता है, तब निश्चय ही उसको यह विश्वास नहीं होता कि उसका मित्र उस प्रतिमा में या चित्र में छिपा बैठा है, या उसके सदस्य उस प्रतीक के विभिन्न अंगों में स्थित हैं। उसका विचार तो यह होता है कि वह अपने मित्र का जो आदर करता है, उसको इस प्रतिमा के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त हो रही है। देवताओं को जो सामग्री चढ़ायी जाती है, उससे देवताओं का कोई सम्मान नहीं होता, वह तो आराधक की सदिच्छा, कृतज्ञता और भक्ति-भावना का प्रमाव मात्र है।



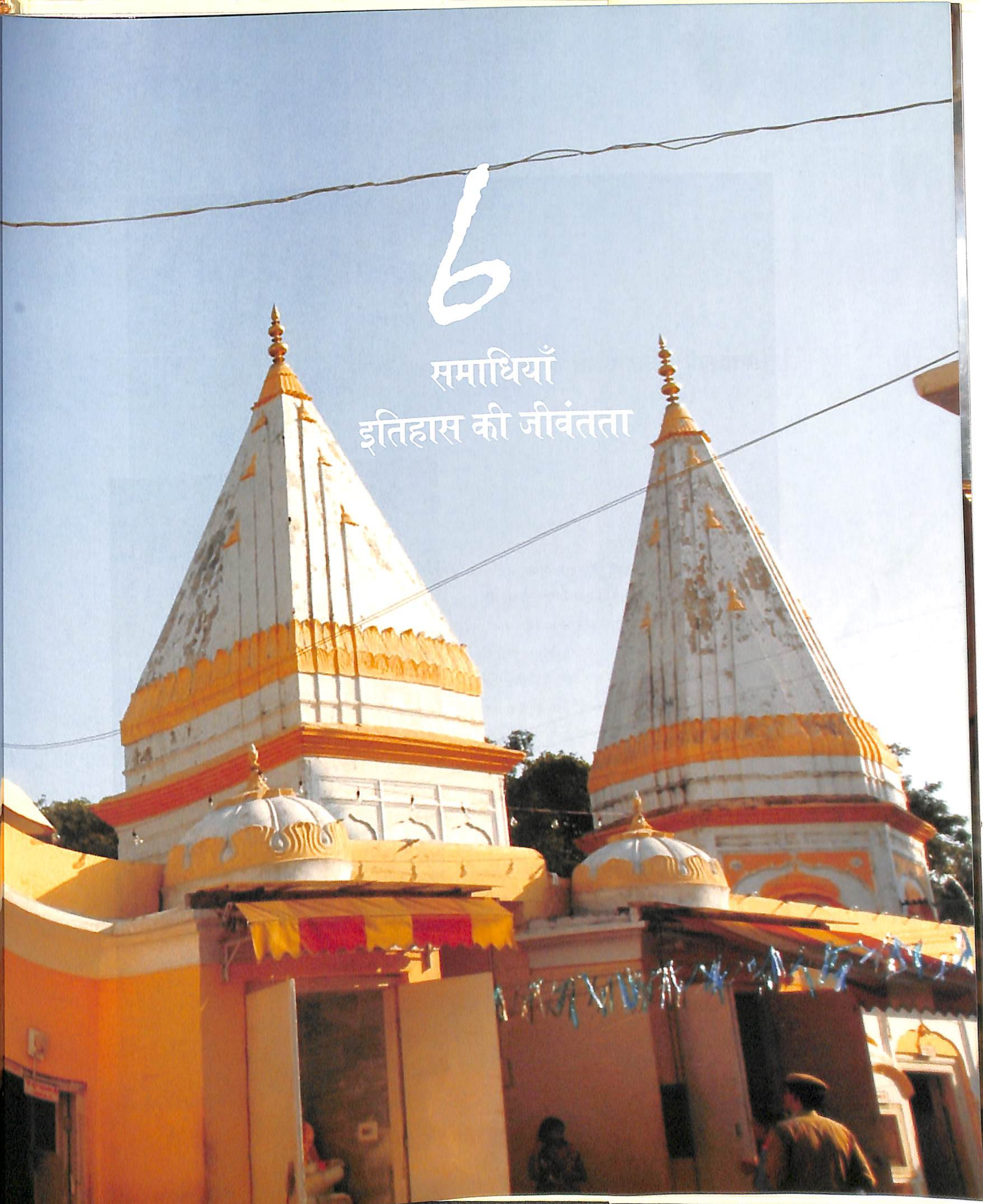






6

समाधियाँ
इतिहास की जीवंतता



समाधियाँ : इतिहास की जीवंतता

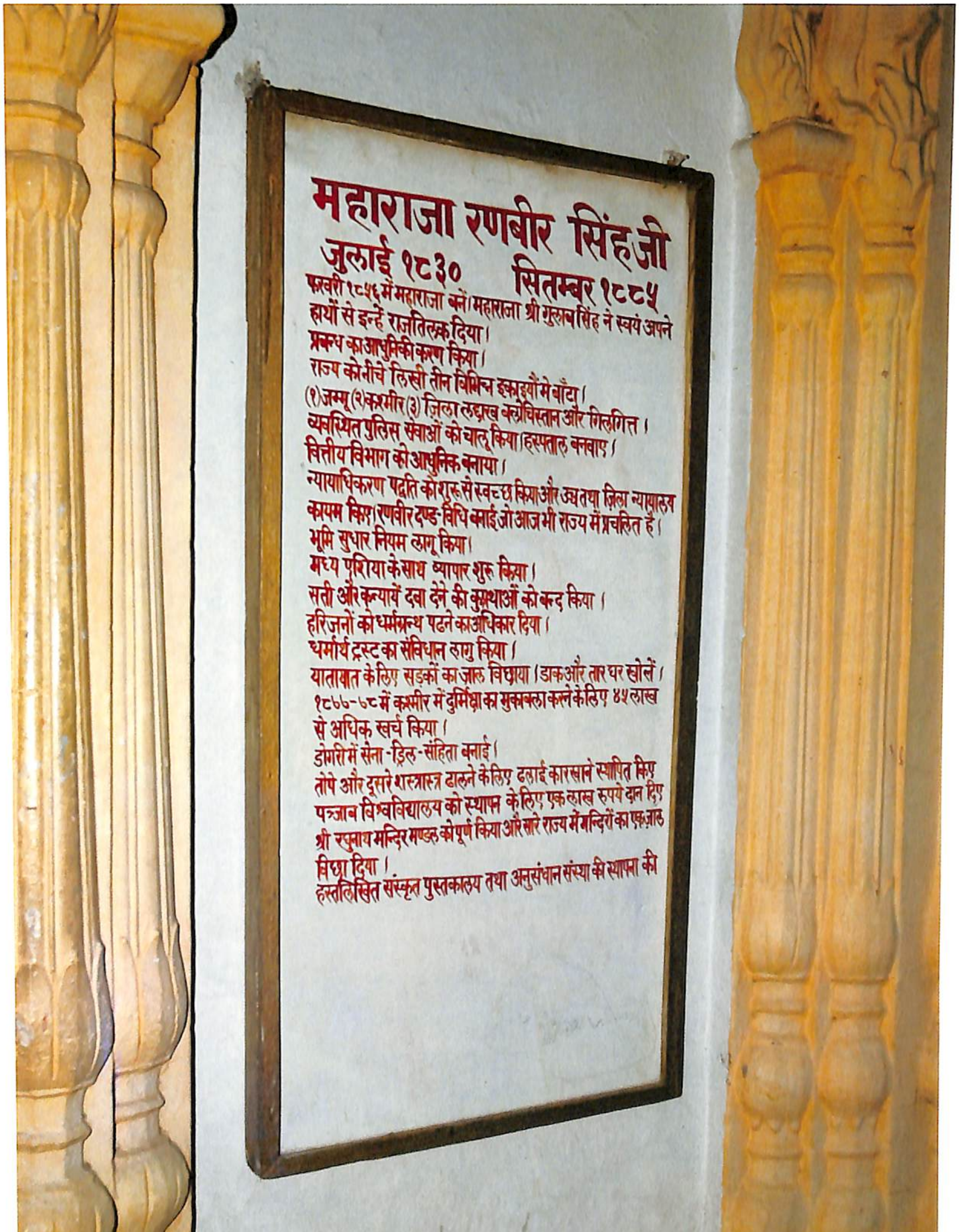


महाराजा गुलाब सिंह
(अक्टूबर 1762–अगस्त 1857)
जम्म-कश्मीर राज्य के संस्थापक

प्रारम्भ में महाराजा गुलाब सिंह एक सैनिक थे। वास्तव में महाराजा रणजीत सिंह की सेना में एक सैनिक से उन्नति करके सेनापति बने। 16.6.1822 में महाराजा रणजीत सिंह ने अखनूर में चंद्रभागा (दरिया चिनाब) नदी के तट पर राजतिलक देकर जम्मू का महाराजा बनाया। इन्होंने 1834 ई. में लद्दाख को जीता। 1840 ई. में अस्कर्दु विजय किया, और 16.3.1846 को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ 'अमृतसर सन्धि' की, जिसके परिणामस्वरूप कश्मीर की घाटी महाराजा गुलाब सिंह के राज्याधिकार में हो गई और वर्त्तमान जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना हुई।

राज्य की सीमाएँ सेनापति जोरावर सिंह के द्वारा तिब्बत और हिमालय पार प्रदेश तक बढ़ाई गई। जाति और सम्प्रदाय से ऊपर उठकर अपनी सम्पूर्ण प्रजा को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। शाली के भंडार बनाए।

1846 में पाँच लाख के निजी दान से धर्मार्थ ट्रस्ट की नींव रखी और अपने पुत्र को इसका अधिकारी ट्रस्टी बनाया। अपने पुत्र रणवीर सिंह को स्वयं अपने हाथों से राजतिलक दिया और स्वयं तपस्या के लिए कश्मीर चले गये। 4 अगस्त, 1857 को ये स्वर्ग सिधार गए।


महाराजा रणबीर सिंहजी
जुलाई १८३० सितम्बर १८८५
फरवरी १८५६ में महाराजा बने। महाराजा श्री गुलाब सिंह ने स्वयं अपने
हाथों से इन्हें राजतिलक दिया।
प्रबन्ध का आधुनिकीकरण किया।
राज्य को नीचे लिखी तीन विभिन्न इकाइयों में बाँटा।
(१) जम्मू (२) कश्मीर (३) ज़िला लद्दाख बलोचिस्तान और गिलगित्त।
व्यवस्थित पुलिस सेवाओं को चालू किया। हस्पताल बनवाए।
वित्तीय विभाग को आधुनिक बनाया।
न्यायाधिकरण पद्धति को शुरू से स्वच्छ किया और उच्च तथा ज़िला न्यायालय
कायम किए। रणबीर दण्ड-विधि बनाई जो आज भी राज्य में प्रचलित है।
भूमि सुधार नियम लागू किया।
मध्य एशिया के साथ व्यापार शुरू किया।
सती और कन्यायें दबा देने की कुप्रथाओं को बन्द किया।
हरिजनों को धर्मग्रन्थ पढने का अधिकार दिया।
धर्मार्थ ट्रस्ट का संविधान लागु किया।
यातायात के लिए सड़कों का जाल बिछाया। डाक और तार घर खोलें।
१८७७-७८ में कश्मीर में दुर्भिक्षा का मुकाबला करने के लिए ४५ लाख
से अधिक खर्च किया।
डोगरी में सेना-ड्रिल-संहिता बनाई।
तोपे और दूसरे शस्त्रास्त्र ढालने के लिए ढलाई कारखाने स्थापित किए
पञ्जाब विश्वविद्यालय को स्थापन के लिए एक लाख रुपये दान दिए
श्री रघुनाथ मन्दिर मण्डल को पूर्ण किया और सारे राज्य में मन्दिरों का एक जाल
बिछा दिया।
हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकालय तथा अनुसंधान संस्था की स्थापना की



महाराजा रणवीर सिंह जी

(जुलाई 1830 – सितम्बर 1885)

रणवीर सिंह जी, फरवरी, 1856 में महाराजा बने। पिता महाराजा श्री गुलाब सिंह जी ने स्वयं अपने हाथों से इनका राजतिलक किया। महाराजा रणवीर सिंह जी ने अपने राज्य के प्रबंध का आधुनिकीकरण किया। राज्य के व्यवस्थित एवं सुनियोजित संचालन के लिए इसे तीन इकाइयों में बाँटा – (i) जम्मू; (ii) कश्मीर; और (iii) ज़िला लद्दाख, बलोचिस्तान और गिलगित।

इन्होंने अपने राज्य में व्यवस्थित पुलिस सेवा प्रारम्भ की, अस्पताल बनवाए, वित्तीय विभाग का आधुनिकीकरण किया, न्यायाधिकरण पद्धति को स्वच्छ एवं जनतांत्रिक बनाया तथा उच्च एवं ज़िला न्यायालय की स्थापना की। इन्हीं के कार्यकाल में रणवीर दण्ड विधि बनाई गई, जो आज भी राज्य में प्रचलित है।

भूमि-सुधार अधिनियम बनाया गया। मध्य-एशिया के साथ व्यापार प्रारम्भ किया गया। सती तथा कन्याओं पर अत्याचार की कुप्रथा बंद किया, हरिजनों को धर्मग्रंथ पढ़ने का अधिकार दिया गया। धर्मार्थ ट्रस्ट का संविधान व्यवहार में लाया गया। यातायात, डाक और तार विभाग का व्यापक ध्यान दिया गया और जम्मू-कश्मीर राज्य को पूरे उत्साह के साथ व्यवस्थित करने का सकारात्मक प्रयास किया गया।

1877–78 में कश्मीर में दुर्भिक्ष का मुकाबला करने के लिए 45 लाख से अधिक खर्च किये गये। डोगरी में सेना ड्रिल संहिता बनाई गयी। तोपें और अन्य अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए ढलाई कारखाने स्थापित किया गया। पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए एक लाख अनुदान दिया गया। श्रीरघुनाथ मंदिर को पूर्ण कर सम्पूर्ण राज्य में मंदिरों का एक जाल बिछा दिया गया। इन्हीं के समय दुर्लभ हस्तलिखित संस्कृत पाण्डुलिपियों के पुस्तकालय की स्थापना की गई।

श्री108 महाराजाधिराज रणवीर सिंह जी

इन्द्र–महेन्द्र, सिपर-सल्तनत, जनरल-असाक-इंग्लिशिया, मशीरे-खास, कैसरे-हिन्द, G.C.S.I., C.I.E., जम्मू-कश्मीर-तिब्बता-धनेक-देशाधिपति।

जन्म सं. 1887 वि, निर्वाण सं. 1942 वि., प्रतिष्ठापन सं. 1915 वि.

मूर्त्तः सनातनोधर्मः, सुरगीः - समुपासकः।
वपुष्मन्-न्याय-वात्सल्यं "रणवीर" महीपतिः।।1।।
सांग देवालयं स्वेष्टरघुनाथस्य भक्तितः।
प्रतिष्ठापितवाँल्लोक-संगहाय समादरात्।।2।।

राजा अमर सिंह

(1848 – 1908)

जम्मू कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री एवं सेना के सेनापति।





शिलालेख



7

श्रीकर्णेश्वर नटराज बगलामुखी मंदिर



कला-सौंदर्य एवं दर्शन

समाधियों के साथ श्रीकर्णेश्वर नटराज-बगलामुखी मंदिर है, जिसका उद्घाटन 19 अप्रैल 1979 – 19 वैशाख 2036 को धर्मार्थ ट्रस्टी चेयरमैन, डॉ. कर्णसिंह तथा श्रीमती यशोराज्य लक्ष्मी के करकमलों द्वारा सम्पन्न किया गया।

"निश्चय ही हिंदू धर्म और संस्कृति का सबसे बड़ा आरेखन इसकी अपार विभिन्नताओं में है, जिसमें अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि वाले लोग मिल-जुल कर रह रहे हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसंद की धर्म पद्धति चुनने के लिए स्वतंत्र हैं, वह किसी एक पद्धति के प्रति बाध्य नहीं । यही नहीं, यहाँ की भक्ति सार्वभौम है ... व्यक्ति अपनी श्रद्धा और मान्यता के अनुसार ईश्वर का कोई भी रूप और भक्ति की कोई भी धारा चुन सकता है। हमारे परिवार के इष्ट श्रीराम हैं, जम्मू में महाराजा रणवीर सिंह द्वारा बनवाया श्रीरघुनाथ जी का विशाल मंदिर निस्संदेह भारत के सबसे खूबसूरत मंदिरों में से है। मुख्य मंदिर एक आयताकार आँगन से घिरा है, जिसमें सवा लाख शालिग्राम स्थापित हैं जो देश की विभिन्न पवित्र नदियों की तलहटी से लाए गए थे। इसके चारों तरफ और भी बड़ा आँगन है, जहाँ बहुत सारे मंदिर है। इनमें हिंदू धर्म के लगभग सभी देवी एवं देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित हैं। ये आँगन भी एक और बड़े आँगन से घिरा है, जिसमें शिव मंदिर बने हुए हैं ... और यहीं हमारे पूर्वजों की अस्थियाँ सुरक्षित हैं। कुछ समय पहले मैंने एक नटराज की मूर्ति स्थापित की, जो उत्तर भारत में पहली है। यहाँ पर स्फटिक का विशाल पारदर्शी शिवलिंग है, जिसे मैंने जर्मनी में बनवाया था। समय आने पर इसके नीचे मेरी और मेरी पत्नी की कुछ अस्थियाँ रखी जाएँगी।

कर्णसिंह : आत्मकथा, पृ० 203–4

भाव से लोक, शास्त्र और समाज में उपस्थित रहती है। नटराज ऐसे ही सर्व स्वीकृत भाव विग्रह है जो भारतीय मनीषा के प्रतिनिधि रूपंकर के रूप में मान्य हैं, वे एक साथ विभिन्न स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा, तेजस्विता, शक्तिमत्ता, प्रांजलता, ब्रह्माण्डीय उदात्तता एवं दिव्यता के चिरंतन प्रतीक हैं। कला, साहित्य, संस्कृति और दर्शन में समान रूप से विच्छुरित उनकी भाव सत्ता विभिन्न निकायों, शास्त्रों और अनुशासनों द्वारा परिभाषित की जाती रही है, लेकिन नटराज की संपूर्णता और समग्रता को अनुबद्ध करना आज तक संभव नहीं हो पाया है। यहाँ नटराज की प्रवहमान निरंतरता को आंशिक रूप से ही सही व्याख्यायित एवं परिरेखित करने का प्रयास है। यह प्रयास, नटराज के उन नये प्रस्थान बिंदुओं की ओर आकृष्ट करेगा – जो विद्वानों द्वारा अब तक अनदेखे या उपेक्षित रह गए थे।

सौंदर्य मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्ति के मनोरम उत्कर्ष को उपस्थित करने वाला शाश्वत पक्ष है। सौंदर्य प्रीतिकर होता है, आह्लादकारी होता है और मानव-मन को सहज रूप से अपनी ओर आकर्षित करता है। उत्सुकता, अन्वेषण और सर्जना एक सहज वृत्ति है। यह सर्वत्र दिखता है कि मानवीय उत्सुकता उदात्त रूप लेकर आकार ग्रहण करे। इस तरह के सभी रचनात्मक प्रयासों को कला के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है। काव्य-कला, रूपंकर कलाएँ, संगीत और नृत्य ही नहीं, मृण्मय (मिट्टी), काष्ठ (काठ) या फिर धातु को माध्यम बनाकर जीवंत सर्जना, प्राचीन काल से सभ्य समाज में आदर एवं सम्मान का पात्र बन चुकी हैं। सर्जना अपूर्व अर्थात् नवीन या कहें जो अबतक मानव-जाति के अनुभव में नहीं आ चुका है, ऐसे अनुभव को जन्म देती है। ऐसा करना नया जन्म कहा जा सकता है तभी तो क्षण-क्षण में नवीनता का संचार रमणीय कहा गया –



"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।।"

ओजस्विता, नवीनता और अद्यतन बने रहने का आकर्षण सृजन का मूल स्रोत है।

कला के विषय में विचार करते हुए यह अनुभव होता है कि भारतीय मानस इस अर्थ में विलक्षण है कि वह निरपेक्ष भाव से नहीं सोचता। वह प्रकट रूपों में विरोधों या विरोधाभासों को भी व्यापक अनुभव के साथ निर्मित अंग मानकर चलता है। इस तरह की विचित्र संकल्पना 'हाँ' और 'नहीं' की कोटियों में सभी अनुभवों को रखकर कहने के अभ्यस्त हो चुकी पाश्चात्य मनोवृत्ति को विकारग्रस्त लगता है। पर, संदर्भों में सत्य ढूँढ़ने वाली भारतीय बुद्धि के लिए यह आश्चर्य नहीं, बल्कि सहज लगता है। ऐसी बुद्धि के सामने – 'सत्यमेव जयते' तथा 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' जैसे सूत्र अन्तर्विरोध या अवरोध उत्पन्न नहीं करते। धर्म, अर्थ और काम तीनों का सेवन करने के पुरुषार्थ की अवधारणा भी उसे अटपटी बात नहीं नज़र आती। शायद, यह एक व्यापक दृष्टि, जो सबको देखते हुए चलती है जो सबको सबमें देखता है, एक ही तरह देखने का भाव रखता है, जो अव्यय है, वही सच्ची तरह देखना कहा गया है। समग्रता, परस्पर निर्भरता, निरंतरता और पूरकता यहाँ के सोच का मूल आधार है। भारतीय सोच की दुनिया ऐसी है जहाँ भक्त और भगवान्, देवता और मनुष्य, खुदा और बंदा – एक दूसरे पर निर्भर करते दिखाए गए हैं। ऐसी हज़ारों कहानियाँ मिल जायेगी, जिनमें भगवान् को भक्त के हाथों का खिलौना दिखलाया गया है। भगवान् की सदिच्छा भक्त के अधीन है। इस तरह के सोच की सबसे समर्थ अभिव्यक्ति शिव की संकल्पना में अपने चरम में परिलक्षित होती है। शिव से विलक्षण शायद ही कोई अवधारणा पायी जा सकती है। शिव एक ओर दुनिया से विरक्त हैं, भोले बाबा हैं, किसी से कुछ ख़ास लेना-देना नहीं है, वे तरह-तरह के बेतरबीत रिश्ते-नाते और रुचियों को पालते हैं कि उन्हें किसी एक बँधी-बँधाई कोटि में रखना मुश्किल है। वे अपने ऊट-पटांग आचरण और व्यवहार से सबको चकित करते चलते आशुतोष शिव विपर्यासों में क्रम दर्शाते हैं। दूसरी ओर वे औघड़दानी हैं, वे सबकी इच्छा पूरी करते हैं, उनकी झोली कभी ख़ाली नहीं होती। वह सबको आप्यायित करते हैं, परिपूर्ण कर देते हैं। एक वही हैं जो संहार के देव भी हैं और सबके कल्याण के लिए विषपायी नीलकंठ बन जाते है और विश्व मानवता को अमृत दान देते हैं।



शिव भारतीय चेतना में मंगल तत्त्व के समर्थ प्रतिविम्ब और प्रबल उद्‌बोधक हैं। परंतु यह शिव का एक पक्ष है। वह समग्र जीवन के अधिष्ठान हैं, वे ईश्वर नहीं, महेश्वर हैं। उनके इस रूप ने सौंदर्य और कला विषयक चिंतन को भी प्रभावित किया है।







शिव के अनेकानेक रूप भारतीय मानस पर जाने कब से उकेरे हुए हैं। इन सभी रूपों में लय, गति और छंद से अभिभूत करनेवाली छवि नटराज शिव की है। जीवन्त गतिमय सौंदर्य के प्रतिमान शिव का यह रूप अनेक मिथकों, कथाओं और निर्मितियों का जनक एवं प्रेरक है। ज्ञान-विज्ञान के बहु-आयामी प्रयोग नटराज की अवधारणा से जुड़े हुए हैं। दक्षिणामूर्त्ति शिव मंगलमूर्त्ति है और उनका नृत्य सृष्टि का समारम्भ है। शिव के सभी रूपों में नटराज अपनी सजीव स्पंदनात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रख्यात है। कहना न होगा, नटराज भारत के सांस्कृतिक चिंतन के केन्द्रीय प्रतीक के रूप में स्थापित हो चुके हैं।

वस्तुतः उपनिषद् काल में जिस सत्, चित् और आनन्द की त्रयी को लेकर, जो समग्र अस्तित्व की संकल्पना की गई थी, उसकी फलश्रुति नटराज के रूप में हुई दिखती है। सौंदर्य की यह परिपक्व अभिव्यक्ति है। यह स्थूल को सूक्ष्म से जोड़ने और दिव्यता के भाव के अनुकीर्त्तन का माध्यम है। यह भारतीय मनीषा द्वारा आत्म परिशोधन और परिष्कार की समर्थ चेष्टा है। शिव ईश्वर के सगुणरूप को प्रस्तुत करते हैं और नटराज नृत्य के माध्यम से स्पंदन और सृजन को समग्र ब्रह्माण्ड में रूपायित करते हैं। ध्यान से देखें तो इस प्रतिमा में एक नहीं, अनेकानेक प्रतीक समस्त प्रकृति और जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

भारतीय शिल्प की एक अद्भुत कलात्मक विरासत के रूप में नटराज अनेकानेक विचारकों, भक्तों, शोधकर्त्ताओं और कला-प्रेमियों के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं। प्रस्तुत रचना इसे भी रेखांकित करने का प्रयास करती है कि नटराज किन-किन रूपों में, किन-किन विशेषताओं के साथ अंकित एवं चरितार्थ किए गए हैं।

नटराज शिव का अर्धनारीश्वर–रूप सदाशिव है। अवश्य ही, पहले-पहल देखने में यह विचित्र एवं अस्वाभाविक-सा नज़र आता है, परंतु अधिक ध्यानपूर्वक देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो इसके अंदर मानव-जाति का एक महान् आदर्श छिपा हुआ है। अर्धनारीश्वर-रूप को देखने से पता चलता है कि इसके निर्माणकर्ता ने उस आध्यात्मिक भाव को भलीभाँति हृदयंगम किया था, जो इसके पीछे छिपा हुआ है, उसके दोनों अंगों का इस

सुन्दरता के साथ मेल हुआ है कि यह देखते ही बनता है। इस स्वरूप के दर्शनमात्र का प्रभाव मन मस्तिष्क को इस अर्धनारीश्वर-रूप के आध्यात्मिक रहस्य की खोज को प्रेरित करता है।

एक विचार यह भी है कि ईश्वर का सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृ स्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप, वह स्वरूप है जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनों का पूर्णरूपेण सामंजस्य हो जाता है। अर्थात् शिव और शक्ति दोनों मिलकर अर्धनारीश्वर रूप में हमारे सामने आते हैं। उसी में हमें सत् और चित् – इन दो रूपों के साथ-साथ उनके तीसरे आनन्दरूप के भी दर्शन होते हैं। बाइबिल के सर्ग सम्बन्धी अध्याय – Genesis में लिखा है कि ईश्वर ने मनुष्य के रूप में अपनी ही प्रतिकृति बनायी, उन्होंने उसकी पुरुष और स्त्री के रूप में सृष्टि की – "God created man is his own image, male and female created the then". स्त्री और पुरुष दोनों ही ईश्वर की प्रतिकृति हैं, स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परंतु 'आनन्द' के दर्शन तब होते हैं, जब ये दोनों पूर्णतया मिलकर एक हो जाते हैं। इस पूर्ण एकता का स्वरूप क्या है? अर्धनारीश्वर वास्तव में स्त्री और पुरुष की पूर्ण एकता की अभिव्यक्ति है। इसी समता का नाम ही योग है – समत्वं योग उच्यते। अपनी अर्द्धांगिनीं, धर्मपत्नी के साथ पूर्ण एकात्मता का अनुभव कर, उसकी आत्मा में आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्दस्वरूप नटराज शिव की उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योग का स्वरूप यही है, जिसकी सिद्धि संसार में रहकर ही होती है।

सच्ची समता, जो सत् और चित् के पूर्ण संयोग से उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वर के विग्रह में अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष और प्रकृति के संयोग द्वारा माया (द्वंद्वमय जगत्) के आवरण को भेदकर आनन्दरूप पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थिति में पहुँच जाता है, जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति, न स्त्री है, न पुरुष – केवल एक अद्वितीय वस्तु – 'एकमेवाद्वितीयम्' ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्द की मूर्ति अर्धनारीश्वर नटराज शिव हैं।

दक्षिण भारत में शिव के नटराज या नटेश रूप का प्रचार प्रचुरता से हुआ है। वैसे ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक दृष्टि यह समग्र एशिया में प्रसारित रहा है। जहाँ अपस्मार पुरुष की पीठ पर ताण्डव नृत्य करने वाले प्रलयंकर महानट शिव की कांस्य प्रतिमा, टेराकोटा एवं मूर्त्ति शिल्प भारत के कला-जगत् का बहुमान्य सांस्कृतिक प्रतीक बन गयी है।

गुप्तकाल में शिव की ध्यान-मूर्तियों में 'महानट' का उल्लेख मिलता है। वीणा लिये हुये शिव को वीणादक्षिणामूर्ति के नाम से पहचाना जाता है। उत्तर भारत में शिव की इस ध्यानमूर्ति के तीन अन्यरूप भी मिलते हैं। एक में वीणापाणि शिव वृष और पार्वती के साथ खड़े दिखाई पड़ते हैं। दूसरी में, हाथ में वीणा लिये नृत्य करते हुए शिव के दर्शन होते हैं और तीसरी में, वीणा लिये हुये मातृकापट्ट पर स्थित दृष्टिगोचर होते हैं।

शिव के अनेक रूपों में उनका नर्तक रूप प्रसिद्ध है। ताण्डव नृत्य के साथ शिव का अभिन्न सम्बन्ध है। नटराज प्रवर्तित नृत्य के अनेक प्रकार हैं, जिनमें ताण्डव सर्वप्रमुख है। कहते हैं – शिव ने त्रिपुरदाह के बाद उल्लास-नर्तन किया था और इसका अनुकरण उनके शिष्य 'तण्ड' या 'तण्डु' मुनि ने किया। यही उल्लास-नर्तन ताण्डव का मूल है। मूलतः इस नृत्य की संज्ञा 'शिव ताण्डव' है क्योंकि शिव इसके आदि प्रवर्तक और तण्डु इसके प्रथम प्रचारक थे।

शैवागम में ताण्डव नृत्य के सात प्रकारों का उल्लेख है यथा – आनन्द ताण्डव या ललित ताण्डव, संध्या ताण्डव, कालिका ताण्डव, त्रिपुर ताण्डव, गौरी ताण्डव और संहारताण्डव तथा उमाताण्डव। शिव और शिवा का सम्पृक्त होकर सक्रिय होना ही नटराज का नर्तन है।

नटराज का ताण्डव केवल प्रलय या संहार का ही नृत्य नहीं है, अपितु सृष्टि और संहार के संतुलन के निमित्त निरन्तर चलनेवाला महानृत्य है। प्रलयनृत्य तो वह तभी होता है, जब शिव क्रुद्ध होते हैं। औढरदानी शिव कभी अप्रसन्न नहीं होते, किन्तु मानव जब प्रकृति के विरुद्ध आचरण करता है, तभी वे क्रुद्ध होते हैं। उनके डमरू-स्वर से जीव में आत्मा का प्रवेश होता है और पैरों की थाप से यह


जयश्रीराम

धरती अन्न-जल और फूल-फल की उत्पत्ति का कारण बनती है। नटराज शिव का नृत्य रुक जाय तो समस्त सृष्टि ही विलीन हो जाय। मूलतः 'ताण्डव' शब्द नृत्य का ही एक पर्याय है, किंतु महानटराज शिव के महानृत्य के साथ सम्बद्ध हो जाने से अपनी स्वतन्त्र आख्या के साथ यह 'सृष्टि-विवर्तक शिवनृत्य, के रूप में विश्वव्यापक हो गया है।

उल्लास-नर्तन में रस और भाव नहीं थे। भगवान् शिव इस ताण्डव से अतिशय उन्मत्त हो उठे थे। वह भूल ही गये थे कि त्रिपुर-वध का मुख्य उद्देश्य जगत् की रक्षा था। उल्लास के अतिरेक में उनके उत्ताल नर्तन से नभोमण्डल विक्षुब्ध हो गया था, दिशाएँ स्तब्ध हो गई थी, धरित्री धँसने लगी थीं, परंतु नटराज शिव निर्बाध नाचते ही गये – निर्बाध। उन्हें संयत करना आवश्यक समझ भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य किया। इस नृत्य का प्रयोजन सोद्देश्य था। ताण्डव रस-भाव से विवर्जित था और लास्य रस-भाव से समन्वित। इसी ताण्डव एवं लास्य के सामंजस्य से सृष्टि-प्रपंच का विस्तार हुआ है।

दक्षिण भारत के चिदम्बरम् मन्दिर में जगद्विदित नटराज की मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिनका नृत्य पवित्रतम माना जाता है। नटराज शिव ने प्रथम बार पृथ्वी पर चिदम्बरम् मन्दिर में ही संध्या-समय ताण्डव-नृत्य प्रस्तुत किया था, ऐसी पारम्परिक मान्यता है। किंतु ज्ञातव्य है कि नटराज मूर्ति ने नादप्रधान नादान्त नृत्य केवल चिदंबरम् में ही नहीं, अपितु दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में किया था। महाकवि कालिदास ने भी उज्जयिनी के महाकाल शिव के वर्णन प्रसंग में उनके द्वारा सांध्यनृत्य करने का उल्लेख किया है –

कुर्वन् संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्।
नृत्यारम्भे हरपशुपतेराद्रनागाजिनेच्छाम्।।

(34, पूर्व मेघ, मेघदूत)

प्रसिद्धि है कि त्रैलोक्यजननी गौरी को रत्नखचित सिंहासन पर बैठाकर उनके समक्ष नटराज शिव प्रतिदिन संध्या समय नृत्य करते हैं।

चतुर्भुज नटराज जब नृत्य-भूमि पर उतरते हैं, तब वह अपना बायाँ पैर अतिभंग-मुद्रा में उठा लेते हैं और अपने जटाभार को बाँध लेते हैं। पुनः अपने अंगों को विभिन्न रत्नों से अलंकृत करते हैं। कुछ जो खुली जटाएँ होती हैं, वे हवा में फहराती हैं। बद्ध केश, कपाल, सर्प, गंगा, चन्द्रमा और रत्नमाला – सब मिलकर विचित्र शोभा बिखेरते रहते हैं। बायें कान में वह पुरुष-कर्णाभूषण और दायें कान में स्त्री-कर्णाभूषण पहनते हैं। गले में हार और सर्प-यज्ञोपवीत सुशोभित रहते हैं। कमर में रत्नजड़ित मेखला और अंगुलि में मुद्रिका रहती है। अंगवस्त्र लहराता रहता है।

ललित ताण्डव के समय नटराज के प्रथम दायें हाथ में डमरू रहता है और अन्य ताण्डव के समय दूसरा दायाँ हाथ अभय मुद्रा में। प्रथम बायें हाथ में अग्नि रहती है और दूसरा बायाँ हाथ संकेत मुद्रा में तथा झुका हुआ रहता है। उनका दायाँ पैर पेट के बल लेटे 'अपस्मार' नामक वामनपुरुष की पीठ पर रहता है। वामनपुरुष पद्मपीठ पर अवस्थित रहता है और उसके हाथ में कृष्णसर्प रहता है। पद्मपीठ का आकार लम्बवर्त्तुल होता है, जिससे मण्डलाकार ज्वालांकुर फूटता रहता है और मण्डल को शिव का दूसरा दायाँ और बायाँ हाथ स्पर्श करते रहते हैं। इस प्रकार वर्णित नटराज के अंग और आयुध आदि सभी उपकरण प्रतीकात्मक माने गये हैं। नटराज के इस रूप से मूर्ति, शिल्प, नृत्य, नाट्य, साहित्य आदि समग्र स्थापत्य और ललित कलाएँ अनुप्राणित हैं।

शिवपुराण में उल्लेख है कि नटराज या महानर्तक शिव नृत्यकला के प्रवर्तक थे – सुर-ताल के महान् ज्ञाता थे। शिव को कही-कहीं 'महाभिषक्' भी कहा गया है। 'शिव' संज्ञा ही नटराज के मंगलमय सहज जीवन-दर्शन की ओर संकेत करती है। नटराज शिव का उद्धत नृत्य ताण्डव और पार्वती का कोमल नृत्य लास्य सृष्टि के आवर्तन और प्रवर्तन के द्वन्द्व का समाहार है। नृत्य में स्वयं विरोधों का संतुलन और समंजन है। सामाजिक स्तर पर यही संतुलन परिवार के पवित्र बन्धन में आबद्ध पति-पत्नी का नृत्य है और अन्ततोगत्वा उच्चतम नृत्य भी वही है, जहाँ नृत्य भी अनृत्य हो जाता है और नर्तक नृत्यमय। इसी संदर्भ में नटराज स्वयं नृत्यमय है। नटराज राज भगवान् शिव देवी को नाट्य की शिक्षा दे रहे हैं। नाचते समय किस भाव के अभिनय के लिये हाथ कहाँ और कैसे रहना चाहिये, अंग किस तरह रहे, चरण को किस तरह टेढ़ा करके रखना चाहिये, यों अभिनय और उसकी स्थिति सिखला रहा है। इस निभृत विनोद के समय किसी भी सेवक को पास नहीं रखा गया है और तो क्या, संगत करने के लिये मृदंगवाला भी पास नहीं रखा गया है। उसका काम भी आप

ही कर रहे हैं। आप बताते है। देखो, इस भाव पर हाथ को यों ऊँचा उठाओ।' किंतु जिस समय मन के अनुकूल काम होता हुआ नहीं देखते हैं, आपसे नहीं रहा जाता। आप उठकर अपने हाथ से देवी के हाथ को ऊँचा उठाकर दिखलाते हैं कि –

'देखो ! बाहु-लता को यों उठाये रखो और इस तरह अपने अंग को रखो। हूँ, हूँ, देखो बहुत ऊँची नहीं। 'नम' कुछ नीची हो जाओ। हैं, हैं, देखो, पैर के अग्रभाग को कुंचित कर लो।' नयी सीखवाली देवी से जब यह ठीक-ठीक नहीं बैठता तब आप कहते हैं, 'देखो, मेरी तरफ देखो, मैं कैसे खड़ा हूँ', यों स्वयं अभिनय करते हुए सिखा-सिखाकर आप श्रीपार्वती को नचा रहे हैं और 'पकभम् पकभम्' करके अपने मेघगम्भीर-ध्वनियुक्त मुँह से पखावज भी बजा रहे हैं। 'सम' पर ठीक-ठीक विश्राम होता जाय, इसके लिये अपने हाथों से आप 'ताल' भी देते जाते हैं। किंतु नवशिक्षिता होने के कारण जब 'लय' में धीमी पड़ जाती हैं, जब आप भी 'लय' को तोड़कर विलम्बित लय से तालिका देने लगते हैं। वही शिव की तालिकाएँ आपकी रक्षा करें –

"एवं धारय देवि बाहुलतिकामेवं कुरुष्वांगकं
मात्युच्चैर्नम कुंचयाग्रचरणं मां पश्य तावत्स्थितम्।
देवीं नर्तयतः स्ववक्त्रमुरजेनाम्भोधरध्वनिना।
शम्भोर्वः परिपान्तु लम्बितलयच्छेदाहृतास्तालिकाः।।"

भारत के आध्यात्मिक जगत् में नटराज शिव की अलौकिक अवधारणा है। ये नाट्य के आद्य प्रवर्तक हैं और इस प्रवर्तना के अवसर पर वे नटराज के नाम से अभिहित किये जाते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में इस विषय का बड़ा ही रोचक वर्णन उपलब्ध होता है। नाट्यवेद की रचना के अनन्तर तन्निर्दिष्ट अभिनय के प्रदर्शन के लिये ब्रह्मा ने भरतमुनि को आदेश दिया। तदनुसार इन्होंने अपने पुत्रों तथा अप्सराओं के सहयोग से दो नाटकों का मंचन किया, जिसमें प्रथम था अमृत-मन्थन समवकार तथा दूसरा था त्रिपुर-दाह डिम। पूर्वरंग के विधिवत् पूजा तथा अर्चना के अनन्तर सुचित अवसर पर इन दोनों का अभिनय किया गया। इस अभिनय के द्रष्टा के रूप में भगवान् शिव स्वयं उपस्थित थे तथा साथ में उनके भूतगण भी थे। शिव अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने नाट्य की सम्यक् सृष्टि से आह्लादित होकर पितामह से कहा कि नाटक का प्रयोग तो यथार्थ ही हुआ, परंतु इसमें रोचकता कम है, क्योंकि इसमें नृत्य का कथमपि संन्निवेश नहीं किया गया है। इस अभाव की पूर्ति का उपाय शिव ने बताया –

मयापीदं स्मृतं नृत्यं संध्याकालेषु नृत्यता।
नानाकरणसंयुक्तैरंगहारैर्विभूषितम्।
पूर्वरंगविधावस्मिन् त्वया सम्यक् प्रयोज्यताम्।।

(4 / 13, नाट्यशास्त्र)

अर्थात् संध्याकाल में नृत्य करते समय मैंने ही नाना करणों से संयुक्त अंगहारों से विभूषित नृत्य किया है। उसका संयोग पूर्वरंग में करो, जिससे यह शुद्ध पूर्वरंग इन नृत्यादि उपकरणों से समन्वित होने पर 'चित्र' शब्द के द्वारा व्यवहृत किया जाय –

यश्चायं पूर्वरंगस्तु त्वया शुद्धः प्रयोजितः।
एतद्विमिश्रितश्चायं चित्रो नाम भविष्यति।

(4 / 15, नाट्यशास्त्र)

अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में उक्त श्लोक की व्याख्या में लिखा कि पहले, अभिनय में रंजकता अर्थात् दर्शकों को आकर्षित करने की योग्यता किंचिन्मात्र थी, परंतु नृत्त से मिश्रित होने पर यह अभिनय अतिशय रंजकता से सम्पन्न हो जायेगा।

प्रदोष में शिवनृत्य की परंपरा मिलती है। यहाँ भगवान् शिव प्रदोषकाल में डमरू बजाते हुए आनन्दातिरेक से मग्न होकर जगत् को आह्लादित करने के लिये नृत्य करते हैं। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में इसी काल का निर्देश किया है। उज्जयिनी के महाकाल के मन्दिर की घटना है। यक्ष मेघ से कहा रहा है – 'हे मेघ ! यदि तुम महाकाल के मन्दिर में साँझ होने से पहिले पहुँच जाओ तो वहाँ तब तक ठहर जाना, जब तक सूर्य भलीभाँति आँखों से ओझल न हो जायँ और जब महादेव की साँझ की सुहावनी आरती होने लगे,

तब तुम भी अपने गर्जन का नगाड़ा बजाने लगना, जिससे गम्भीर गर्जन का पूरा-पूरा लाभ मिल जायगा। इसी अवसर पर कवि का उल्लेख है –

'नृत्तारम्भे हरपशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छाम्।'

जिससे उस समय शिव के नृत्तारम्भ की सूचना मिलती है।

नाट्य के सार्वभौम आकर्षण तथा सार्वत्रिक मनोरंजन का प्रधान कारण नटराज शिव के द्वारा प्रदर्शित नृत्यों का संन्निवेश ही है। शुद्ध अभिनय को चित्र अभिनय में परिवर्तित करने का श्रेय नटराज शिव को ही जाता है। नृत्त के सम्पादन की क्रिया अंगहारों के द्वारा होती है। अंगहार का प्रधान सहायक होता है – 'करण' ! इस संदर्भ में भरतमुनि का निर्देश –

हस्तपादसमायोगो नृत्यस्य करणंमतम्।

(4/30, नाट्यशास्त्र)

सामान्यतया हाथ तथा पैर के सम्यक् योग होने से 'करण' की निष्पत्ति होती है। अभिनव भारती के अनुसार हस्त–पाद का यहाँ प्रयोग विस्तृत अर्थ में है। हस्त का अर्थ पूरे शरीर के ऊपरी भाग से है तथा पाद का तात्पर्य शरीर के उपरकाय से है जिसके अन्तर्गत पसली, कटि, ऊरू, जंघा तथा चरण आदि का समावेश किया जाता है। इन दोनों की जो संयुक्त क्रिया होगी, उसी का नामकरण है –

पूर्वक्षेत्रसंयोगत्यागेन समुचितक्षेत्रान्तरप्राप्तिपर्यन्ततया एका क्रिया तत् करणमित्यर्थः। हस्तोपलक्षितस्य पूर्वकायवर्तिशाखांगोपांगादेः पादोलक्षितस्य चापरकायगतपार्श्वकट्यूरूजङ्धारणादेः संगततया त्रुटितत्त्वेनावृत्तियोजने पूर्वक्षेत्रसंयोगत्यागेन समुचितक्षेत्रान्तरप्राप्तिपर्यन्ततया एका क्रिया तत् क्रिया तत् करणमित्यर्थः उत्तरसंयोगान्तं सर्वत्र कर्म।

(4/30, अभिनवभारती)

आद्य नर्तक, नृत्त-अधिष्ठाता तथा अभिनयकर्ता के रूप में नटराज का मनोहर तथा अभिराम वर्णन मुद्राराक्षस (1/2) में उपलब्ध होता है। आशय, भगवान् शिव पूरे हर्ष में आकर पृथ्वी पर अपना पैर पटकें, तो पृथ्वी के धँस जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है। अतः वे पृथ्वी की इस अवनति से रक्षा करते हुए नाचते हैं। समस्त लोकों में फैलनेवाली अपनी भुजाओं को संकुचित करते हुए अभिनय करते हैं, जिससे वे लोक भुजाओं के आघात से छिन्न-भिन्न न हो जायँ। शिव जी के तृतीय नेत्र से अग्नि के कण निकलते हैं अतः लोकों के जल जाने के भय से वे अपनी दृष्टि को बंद करके ही नाचते हैं। इस प्रकार आधार को किसी प्रकार आघात न पहुँचे इसलिये वे स्वच्छन्द-रूप से नाचने का व्यापार नहीं करते। त्रिपुर के विजयकर्ता भगवान् शंकर का दुःख से सम्पादित नृत्य आपलोगों की रक्षा करे।'

अतः नटराज शिव का ताण्डव जगत् के मंगल के लिये प्रवृत्त होता है। नटराज का नर्तन जगत् की सृष्टि के लिये होता है, संहार के लिये नहीं। नटराज की यही कल्पना काव्य ग्रंथों में वर्णित है। अतएव, नटराज भगवान् शंकर नृत्त तथा नाट्य के आद्य अधिष्ठाता माने गये।

'लास्य' से 'ताण्डव' भी मनोहर बन जाता है, शक्ति-संयुक्त शिव का प्रकाश पाप-शाप सबका अन्त कर देता है। इसमें समरस अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होने लगती है। नाटक का प्रयोजन ही है कर्त्तव्यबोध कराना, रुचि-परिष्कार करना, साहस बढ़ाना, अज्ञानियों को ज्ञानवान् बनाना, ज्ञानियों का ज्ञानवर्धन करना, बुद्धि-वैभव को विकसित करना तथा समस्त लोगों का सभी दृष्टियों से कल्याण करना, जो भगवान् नटराज शिव के स्वरूप और स्वभाव का परिचायक है।

वस्तुतः नटराज-शिव का प्रेक्षागृह ही ऐसा विलक्षण है कि वहाँ जाने पर किसी भी प्रकार का शोक-संताप नहीं रह जाता। सच तो यह है कि नटराज शिव के रंगमंच पर पहुँचते ही आनन्दमय वातावरण के निर्मित हो जाने पर सभी विघ्न-बाधाएँ स्वतः दूर हो जाती हैं। इस प्रकार विरेचन सिद्धान्त का मूल भी नटराज शिव के अभिनय में ही विद्यमान है।

चूँकि शिव नाट्य परम्परा के आदि प्रवर्तक हैं, इसलिये नाट्य-मण्डप में भी सबसे पहले भूतगणों के साथ उन्हीं की स्थापना का विधान किया गया –

आदो निवेश्यो भगवान् सार्धं भूतगणैः शिवः।

(3/23, उत्तरार्द्ध, नाट्यशास्त्र)

नाट्य में नृत्य और नृत्त स्वतः निहित हैं – उनके बिना रंगमंच पूर्णतः सुशोभित ही नहीं होता। 'नाट्यं गीतादिरंजितम्' (व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट) तथा 'न गीतवाद्यानृतज्ञा' (1/4, नाट्यदर्पण, आ. रामचन्द्र गुणचन्द्र) जैसे निर्देशों से भी इसी स्थापना की पुष्टि होती है।

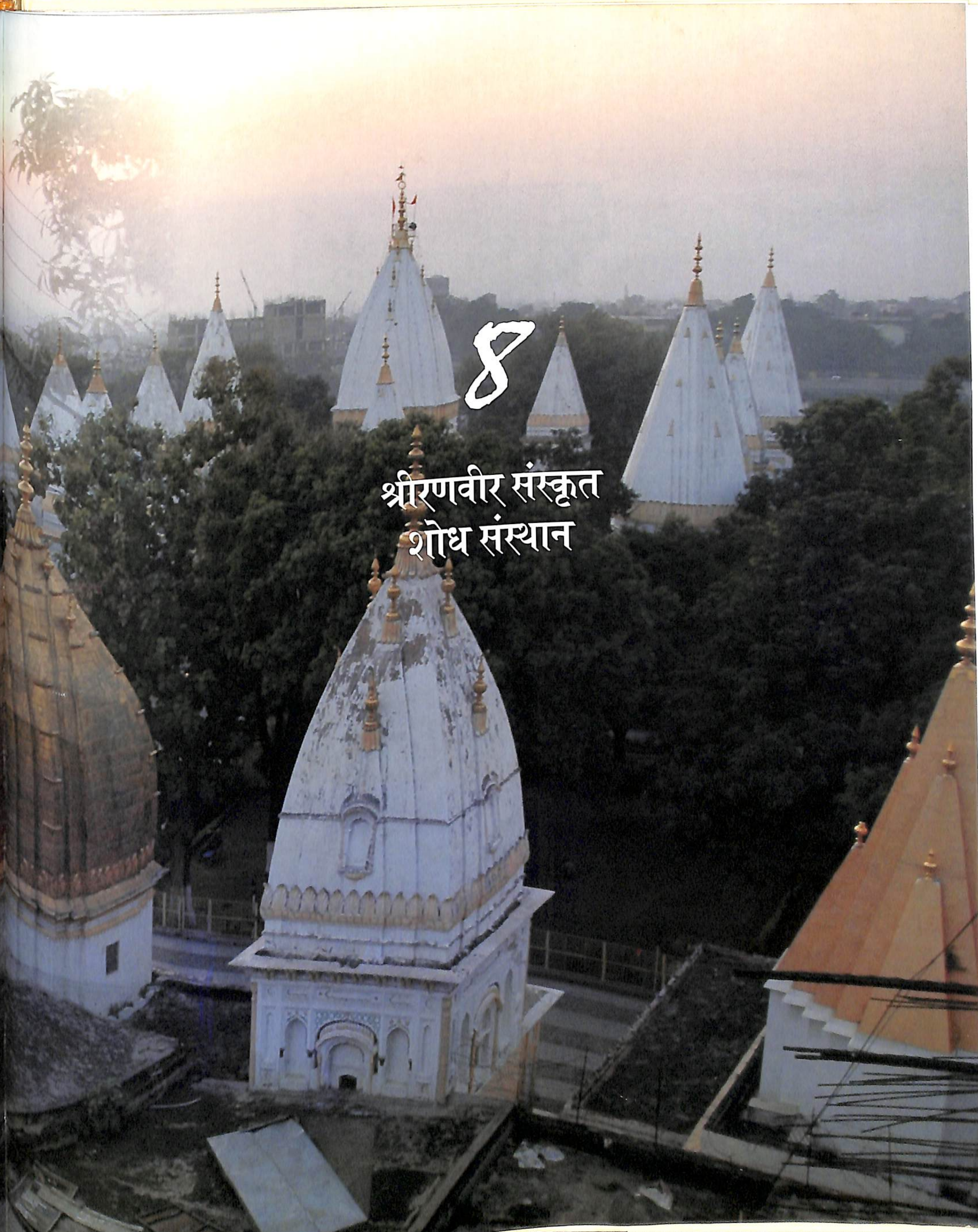
यह स्मरणीय है कि शिव संगीत-गीत, वाद्य एवं नृत्य –' गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते' के भी आदि एवं अद्वितीय विद्वान् के रूप में सुप्रतिष्ठित हैं और 'नृत्त' तो भगवती पार्वती की महती कृपा ही है, जिससे नाट्यकला सही अर्थों में महिमा-मण्डित हो सकी। इसी से नृत्य और नृत्त नाटक के उपस्कारक भी हैं – 'तास्यताण्डवरूपेण नाटकाद्युपकारकम्' (1/10, दशरूपक) 'नाट्यति अवस्कन्दयति' अर्थात् आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनयों के साथ-साथ गायन-वादन-नर्तन आदि सभी विधाओं के प्रयोक्ता भी शिव ही हैं। इसीलिए उन्हें 'विद्यातीर्थे महेश्वरम्' भी कहा गया है और समस्त विद्याओं की प्राप्ति के लिये शिव की उपासना अभिप्रेत मानी गयी है।




श्री रणवीर संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय
धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा संस्थापित

8

श्रीरणवीर संस्कृत शोध संस्थान



श्रीरणवीर संस्कृत शोध संस्थान

जम्मू कश्मीर राज्य के संस्थापक महाराजा गुलाब सिंह के सुपुत्र महाराजा श्री रणवीर सिंह जी ने सन् 1857 में जब राज्य का कार्यभार संभाला, तब उन्होंने अपनी प्रजा की आध्यात्मिक, साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक उन्नति के लिए तथा परस्पर पारम्परिक बन्धुत्व और सुख शान्ति, समृद्धि के प्रसार के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। वे अपने इस राज्य में राम-राज्य का आदर्श स्थिर करना चाहते थे। इन्हीं धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर उन्होंने श्रीरघुनाथ मन्दिर, जम्मू का उद्घाटन किया। इस मन्दिर में भगवान् राम की प्रधानता ने उपाधि भेद से एक ही ईश्वर के अन्यान्य अनेक रूप देवताओं की स्थापना की धर्म का प्रचार विद्या से ही हो सकता है, इसलिए विद्यानुरागियों के लिए इस मन्दिर के साथ ही एक संस्कृत महाविद्यालय और इस संस्कृत पुस्कालय की भी स्थापना की।

कालान्तर में यह संस्कृत पुस्तकालय, श्रीरणवीर संस्कृत शोध संस्थान के नाम से विख्यात हुआ। यह प्राचीन संस्कृत हस्तलिखित दुर्लभ पाण्डुलिपियों का एक समृद्ध पुस्तकालय है, जिसमें संस्कृत के अतिरिक्त डोगरी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, लद्दाखी, तेलगु और शारदा लिपि की बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

देश के विभिन्न स्थानों से हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को यहाँ संग्रह करने के लिए विभिन्न प्रदेश के विद्वानों को प्रोत्साहित किया गया। इस कार्य में पं. श्री गोकुलचन्द्र जी, जयपुर निवासी दुर्गादास के पिता पं. ब्रजलाल जी, बंग निवासी रसमोहन भट्टाचार्य जी, पं. दिलाराम जी वैद्य, ज्योतिर्विद् पं. भास्कराचार्य्य जी नियुक्त किये गये। महाराजा के आदेशानुसार पं. आशानन्द जी बनारस से हस्तलिखित अनेक अमुद्रित ग्रंथों को ले आए।

दुर्लभ हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के संग्रह के सम्बन्ध में प्राच्यविद् डॉ. ओरियल स्टाईन ने लिखा है कि डॉ. फिटनस एड्वर्ड हाल ने पं. वैद्यनाथ घाटम के पुस्तकालय की जिन 99 पुस्तकों का अध्ययन किया था, उनमें से भी 64 पुस्तकें खरीद कर इस पुस्तकालय में लाई गई थीं। इस विषय में विशेष अनुसंधान के लिए बहुत से विद्वान देश-देशांतरों से बुलाये गये। उनमें से पटियाला निवासी पं. व्यासजी की संग्रहीत अमुद्रित पुस्तकें उनकी धर्मपत्नी को पुष्कल धन देकर खरीदी गयी। इसी क्रम में पुरमण्डल के पं. गोपालरामजी, जम्मू के पं. रामकृष्ण जी के अतिरिक्त अन्य सुधीजनों को तथा पुस्तकें लाने वालों को उचितोचित मूल्य के अतिरिक्त पुष्कल पुरस्कार भी दिया जाता था। स्टाईन कैटलाग के अनुसार नं. 3215–18 हस्त्यायुर्वेद, नं. 630 तर्क कुक्तहलम् – इन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को गोपाल दक्षिण नगर, जयपुर से लाये थे, कूर्माचल निवासी पं. दुर्गादत्त जी' 'सिद्धांत सुधानिधि' को भी जयपुर से लाये थे।

शारदापीठ होने के कारण कश्मीर संस्कृत साहित्य की जन्मभूमि रही है। वैदेशिकों द्वारा संस्कृत साहित्य के ध्वंस किये जाने पर भी अभी तक उसके अनन्त अवशेष अवशिष्ट हैं। इस विचार से महाराजा रणवीर सिंह जी ने 1869 में कश्मीर से अमुद्रित

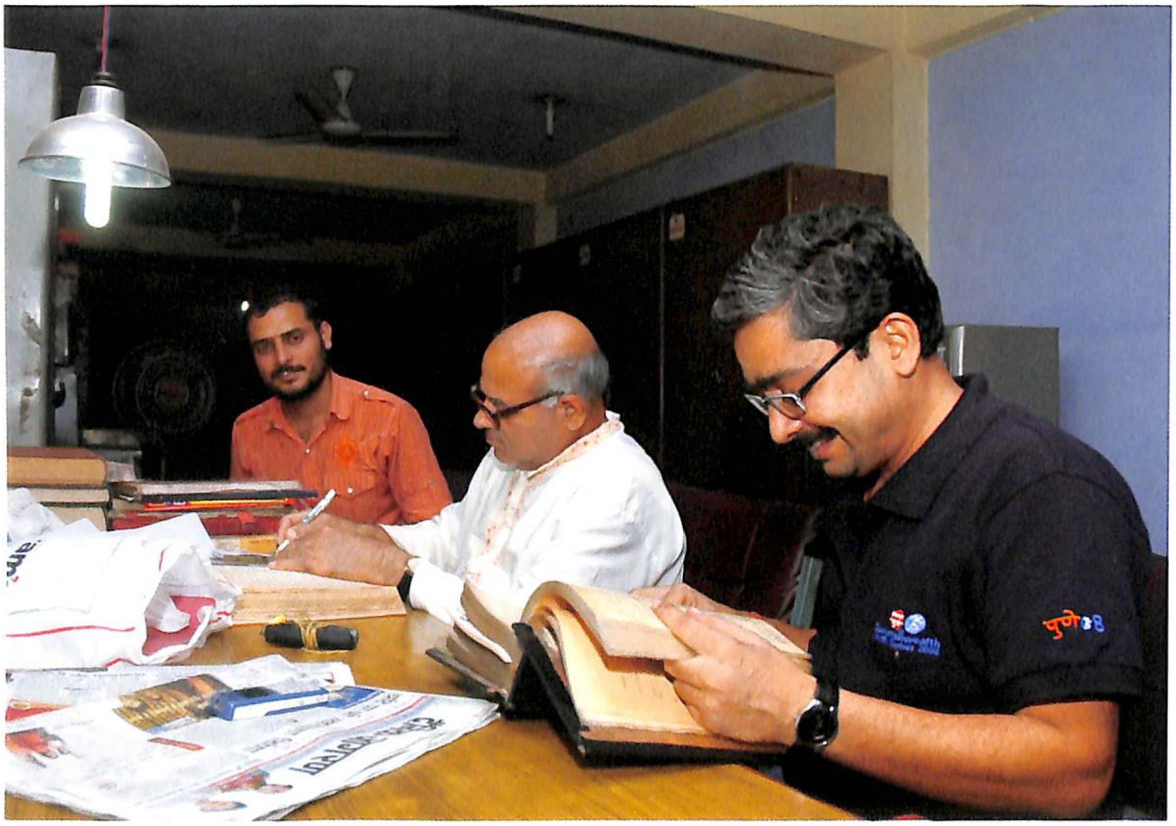

श्री रणवीर संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय
श्री रघुनाथ मन्दिर, जम्मू
धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा संस्थापित

हस्तलिखित ग्रंथों को संग्रह करने का विचार किया। पं. राज काक ने इस कार्य में अधिकाधिक भाग लिया। उसने कुछ ऐसी पुस्तकों का संग्रह किया, जो भारत भर में दुष्प्राप्य थीं। शारदा लिपि में लिखी हुई बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद पं. राजकाक की अध्यक्षता में पं. बलभद्र काक, पं. साहिब राम, पं. कृष्ण तथा अन्य विद्वानों ने देवनागरी में किया। इनमें 12 पुस्तकें भूर्ज-पत्र पर लिखी थीं, जो ज्यों के त्यों पुस्तकालय में उपलब्ध हैं।

इस क्रम में पं. जगद्धरजी, पं. सुखराम जी, पं. आशानन्द, पं. ज्योतिर्विद् दया रामजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बहुत से पण्डितों को काशी भेजा गया, जो वहाँ से नक़ल करके बहुत-सी पुस्तकें लाये।

सन् 1883 में जब अलवर नरेश सवाई श्री मंगलसिंह जी जम्मू आए तो उन्होंने महाराजा से कहा कि आप पुस्तक संग्रह पर इतना व्यय क्यों कर रहे हैं। महाराजा रणवीर सिंह जी ने उत्तर दिया कि वेश्याओं के नृत्य, द्यूत, सुरापान और व्यर्थ के ऐश-आराम पर व्यय की अपेक्षा मैं उस व्यय को श्रेष्ठ समझता हूँ जिससे जनता की धार्मिक और बौद्धिक प्रवृत्तियों का विकास होता है। महाराजा के इस व्यंग्य पूर्ण शब्दों से अलवर नरेश काफी घबड़ाए और महाराजा से प्रभावित होकर अपना सम्पूर्ण अप्रकाशित पुस्तकालय उनको भेंट कर दिया।

महाराजा रणवीर सिंह जी ने 100 से भी अधिक विद्वानों को वैतनिक भृत्ति पर नियुक्त करके जिन पुस्तकों का संग्रह करवाया और नई पुस्तकों का संपादन करवाया, जो देशभर के लिए उपयुक्त और आवश्यक हैं। इसके साथ ही महाराजा ने उर्दू, फ़ारसी और अरबी की पुस्तकों का भी अनुवाद करवाया, जिनमें बड़े-बड़े आलिम फाज़िल मौलवियों ने सहयोग दिया। महाराजा बहादुर अपनी हिन्दू-मुस्लिम प्रजा को अपनी दो आँखें समझते थे। नव्य चण्डीदास ने "रघुनाथ गुणोदय" और "धर्म संक्षिप्तान्हिका" लिखी। साहिबराम ने



"नीति कल्पलता", शिवशंकर ने "रणवीर रत्नाकर", वासुदेव ने वेदान्त सम्बन्धी "चित्त प्रतिभा", गणेश शास्त्री ने आयुर्वेद सम्बन्धी "विषहरतन्त्र", लल्ल पण्डित ने "प्रश्न रत्नावली", श्रीनगर के रामचन्द्र ने "मत्स्यपुराण" की टीका, अहल्लक मुंशी ने तीनों का अनुवाद देवनागरी में करवाया और साहितराम ने "वीर वैद्य रत्नाकर" का देवनागरी में अनुवाद किया। नं. 2836 मुहूर्त खण्ड (ताजिक संहिता) का अनुवार तैलंग के वेंकट शास्त्री, श्रीनगर के पं. दामोदर, पं. गोविन्द कौल, पं. महाडिम्ब, पं. ईश्वर कौल, बनारस के देवकृष्ण ज्योतिर्विद् और जम्मू के गोविन्दाचार्य और गंगाराम ने किया। अनेक पाण्डुलिपियों के कर्त्ता का कोई संकेत नहीं मिलता है। इस शोध संस्थान में रखे हुए हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के कैटलॉग का निर्माण सबसे पहले डॉ. एम.ए. स्टाईन ने किया। उन्हें अनेक भारतीय विद्वानो नें इस कार्य में उन्हें सहायता दी, जिनका उल्लेख उन्होंने कैटलॉग की भूमिका में की है।

डॉ. कर्ण सिंह जी अपने पूर्वजों की तरह, बल्कि उनसे भी बढ़कर संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति से प्रेम रखते हैं। डॉ. कर्ण सिंह जी ने इस पुस्तकालय के पुरातन रूप को आधुनिक एवं समयानुकूल बनाते हुए "श्री रणवीर संस्कृत अनुसंधान संस्थान" का उद्घाटन किया। इनके निर्देशन में स्टाइन के संस्कृत कैटलॉग को अद्यतन करने के लिए पूना से डॉ. एम.एम. पारकर को बुलाया जिन्होंने तीन भागों में कैटलॉग को विभाजित किया। 20 वर्षों बाद छूटे हुए तांत्रिक एवं जैन पाण्डुलिपियों का चौथा भाग डॉ. धनीराम शास्त्री एवं डॉ. कमल किशोर मिश्र ने तैयार किया।

संस्थान में पाण्डुलिपियों का विवरण

(क) अमुद्रित (अप्रकाशित)

(1)	वेद (संहिता ब्राह्मणादि)	202
(2)	सूत्र पद्धति परिशिष्टादि	221
(3)	उपनिषद्	421
(4)	वेदांग	26
(5)	व्याकरण	279
(6)	कोश	70
(7)	छन्दःशास्त्र	27
(8)	संगीतशास्त्र	35
(9)	अलंकारशास्त्र	106
(10)	काव्य	263
(11)	नाटक	54
(12)	आख्यायिकाकथादि	31
(13)	धर्मशास्त्र	718
(14)	पूर्वमीमांसा	158
(15)	वेदांत	404
(16)	साध्यशास्त्र	15
(17)	योगशास्त्र	26
(18)	न्याय वैशेषिक	435

(19)	ज्योतिषशिल्पादि	510
(20)	चिकित्साशास्त्र	241
(21)	महाभारत रामायणादि	79
(22)	पुराण महात्म्यादि	389
(23)	भक्तिशास्त्र	313
(24)	तन्त्रशास्त्र	1031
(25)	जैनशास्त्र	35
(26)	तामिललिपिग्रन्थ	68
(27)	शारदालिपिग्रन्थ (भूर्जपत्र)	29

महाराजा श्री रणवीर सिंह के तत्त्वावधान में सम्पादित, अनुवादित और संग्रहीत ग्रंथ का विवरण :

(क) अप्रकाशित

(1) अथर्ववेद संहिता दैप्पलाद शाखीया

(2) रामपूर्वोत्तर तापनीयोपनिषत टीका हिन्दी-भाषानुवाद संहिता

(3) सारस्वतप्रक्रिया हिंदी भाषानुवाद संहिता

(4) अमरकोष हिन्दी भाषानुवाद संहिता

(5) अमरकोश नाममाला हिंदी भाषा लद्दाखी – भाषानुवाद संहिता

(6) नानार्थ कोश

(7) नामविभाग माला

(8) पंचसायक लक्ष्यवेदनाख्य विवरण सहित

(9) रघुनाथ गुणोदय

(10) रघुवंश संस्कृतान्वय हिंदी भाषा टीका

(11) धर्मशास्त्र संग्रह

(12) नीतिकल्पलता टीका सहित

(13) पूजा रहस्य व्याख्यासहित

(14) वीर रत्न शेखर शिखा

(15) वीर रत्नशेखर शिखा प्रथम श्लोक व्याख्या गहनार्थ प्रकाशिका

(16) संक्षिप्तोह्निक पद्धति

(17) स्त्रीधर्म निर्णय

(18) स्त्री धर्म निर्णय बंगदेश भाषाटीकासहित

(19) चित्त प्रदीप वृत्ति सहित

(20) ब्रह्मसूत्र वृत्तिसार

(21) तर्क संग्रह सिद्धांत चन्द्रोदयाख्या हिंदी टीका सहित

(22) जातक गणित स्कन्ध संग्रह

(23) जातक फल

(24) जातक संग्रह

(25) ताजिक संग्रह

(26) प्रश्न रत्नावली

(27) मुहूर्त खण्ड

(28) सिद्धांत शिरोमणि हिंदी भाषानुवाद वार्तिक सहित

(29) इख्तोया रातम्

(30) एकाक्षर निघण्टु

(31) कल्प सागर

(32) भावेप्रकाश श्री रणवीरसिंह देवालोकन सर्द्वेत सिद्धांतरत्नाकर टीका सहित

(33) वीरवेंध रत्नहार टीकावीरहार लतिका

(34) सार संग्रह

(35) भगवद्गीता 20 टीका सहित

(36) मत्स्यपुराण टीका भाव सहित

(37) मार्कण्डेयपुराण व्याख्यान भाव दीपक

(38) लिंगपुराण टीका भावार्थ संकेत

(39) वामनपुराण व्याख्यान

(40) रणवीर विजय

(41) रणवीर सिंह सदाचार रत्नाकर

(42) रणवीर संगीत महोदधि।

(ख) प्रकाशित

(1) रणवीर प्रायश्चित्त प्रकरणम्

(2) रणवीर ज्योतिर्महानिबन्ध

(3) रणवीर व्रत रत्नाकर

(4) रणवीर चिकित्साप्रकाश

(5) रणवीर चिकित्सा डोगरी लिपि

इस अनुसंधान संस्थान की विशेष दर्शनीय कतिपय प्राचीन पाण्डुलिपियाँ, जो कला के उत्कृष्ट नमूने हैं :

(1)	रामायण संग्रह (वृहदाकार)	789(ख)	
(2)	श्रीमद्भगवद्गीता 20 टीकाएँ	(संचित)	
(3)	रप्-चल नम् यर नोन् पेजूस् पा (लदाखी भाषा) पराक्रमविक्रमपरिपृच्छ		(वृहत्कार)
(4)	तोक् जुंसॅ	(लदाखी भाषा) मुकुटधारणम्	

परिशिष्ट

(क) डोगरा राजपरिवार का वंशवृक्ष

महाराजा गुलाब सिंह

महाराजा रणवीर सिंह

महाराजा प्रताप सिंह | राजा अमर सिंह | राजा राम सिंह

महाराजा हरि सिंह
महारानी तारा देवी

डॉ. कर्ण सिंह
महारानी यशोराज्य लक्ष्मी

राजकुमारी डॉ. ज्योत्सना सिंह | युवराज विक्रमादित्य सिंह | महाराजकुमार अजातशत्रु सिंह

राजकुमारी डॉ. ज्योत्सना सिंह	युवराज विक्रमादित्य सिंह	महाराजकुमार अजातशत्रु सिंह
कुमार विवस्तत कुमारी विवेका	कुमारी मृगांका कुमार मार्तण्ड	कुमारी आदिश्री कुमार रणविजय



महाराजा गुलाब सिंह



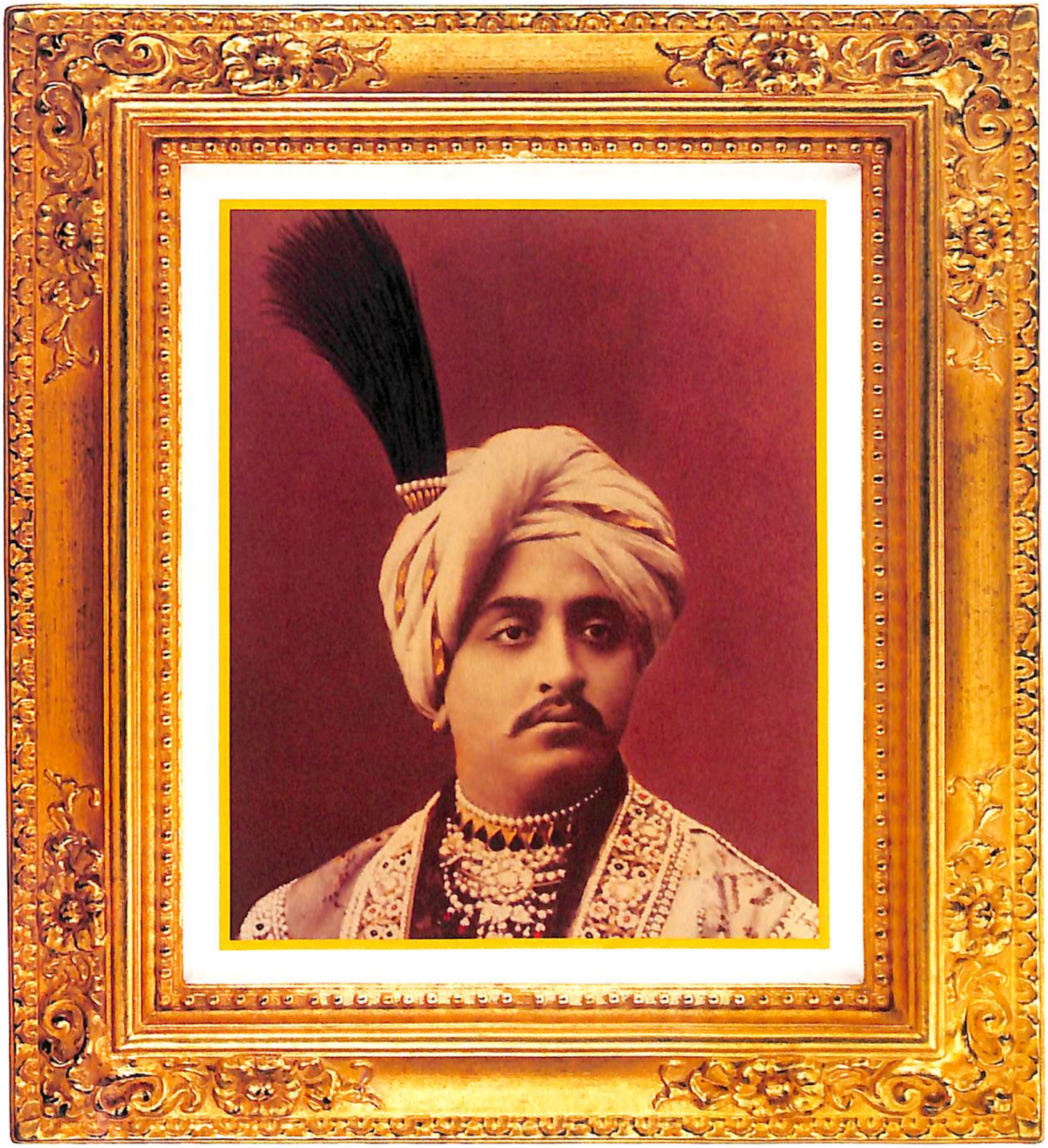
महाराजा रणवीर सिंह



महाराजा प्रताप सिंह



राजा रामसिंह



राजा अमर सिंह



महाराजा हरि सिंह



महारानी तारा देवी



डॉ. कर्ण सिंह



महारानी यषोराज्य लक्ष्मी



युवराज विक्रमादित्य सिंह



महाराजाकुमार अजातषत्रु सिंह

(ख) धर्मार्थ ट्रस्ट परिषद्, जम्मू-कश्मीर

धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना जम्मू व कश्मीर राज्य के संस्थापक स्व. महाराजा श्री गुलाब सिंह जी द्वारा ईस्वी सन् 1846 में 5 लाख रुपये के निजी अनुदान से की गई थी। उन्होंने अपने बेटे युवराज (जो बाद में महाराजा बने) श्रीरणवीर सिंह को छोटी आयु में ही ट्रस्ट का पहला ट्रस्टी नियुक्त किया। महाराजा रणवीर सिंह जी ने हिन्दुओं की धार्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए राज्य के अन्दर तथा राज्य से बाहर बहुत से मन्दिर और धर्मशालाओं का निर्माण किया। प्राचीन धर्मशास्त्रों तथा कर्मकाण्ड में निपुण विद्वान तैयार करने के लिए जम्मू तथा उत्तरवहिनी में संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की। अनुसंधानकर्त्ताओं की सुविधा के लिए उन्होंने 7,000 के लगभग पाण्डुलिपियों के साथ एक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना भी की है। उनके कार्यकाल में धर्मार्थ ट्रस्ट उन्नति के शिखर पर था। उनके उत्तराधिकारी महाराजा प्रताप सिंह जी धर्म, करुणा एवं सह्रदयता की प्रतिमूर्त्ति थे तथा हिन्दू जगत में धर्मावतार के नाम से जाने जाते थे।

महाराजा हरि सिंह जी, जो महाराजा प्रताप सिंह के उत्तराधिकारी बने, एक अथक समाज सुधारक थे। उन्होंने सन् 1932 में हरिजनों के लिए देवदर्शन हेतु धर्मार्थ ट्रस्ट के सभी मन्दिरों के द्वार खोल दिए थे। उन्होंने सन् 1935 में धर्मार्थ ट्रस्ट को राज्य प्रशासन से अलग करके एक स्वतंत्र ट्रस्ट का रूप दिया। 23 जनवरी, 1959 को महाराजा हरि सिंह जी ने अपने सुपुत्र डॉ. कर्ण सिंह जी को जम्मू व कश्मीर धर्मार्थ ट्रस्ट का एकमात्र न्यासी नियुक्त किया।

वर्तमान चेयरमैन ट्रस्टी डॉ. कर्ण सिंह जी भारतीय संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रभावशाली वक्ता हैं। कई पुस्तकों के लेखक डॉ. कर्ण सिंह जी भारतीय दर्शन एवं संस्कृत के सफल व्याख्याता हैं और हिन्दू धर्म के भ्रमणशील राजदूत के रूप में वैदिक संस्कृति का संदेश फैलाने के लिए संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक यात्रा करते रहते हैं। इनकी देखरेख में ट्रस्ट ने एक बहु-आयामी रूप धारण कर लिया है तथा देश की राजधानी दिल्ली में रामायण विद्यापीठ के रूप में प्रवेश किया है, जो कि धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में उभरा है।

यह ट्रस्ट लगभग 120 मन्दिरों का प्रबन्ध व संचालन कर रहा है, उनमें मुख्य श्री रघुनाथ जी मन्दिर जम्मू, श्री रणवीरेश्वर मन्दिर जम्मू, श्री शिवजी मन्दिर पुरमंडल, श्री गजाधर जी मन्दिर उत्तरवहिनी, श्री शुलपाणीश्वर रूद्र महादेव, श्री वासकीनाग मन्दिर भद्रवाहु, श्री अष्टादशभुजा महाकाली मन्दिर सरथल, श्रीराम दरबार मन्दिर, लोदी रोड, नई दिल्ली, श्री शिवजी मन्दिर, वाराणसी, श्री शिवजी मन्दिर कनखल (हरिद्वार), श्री रधुनाथजी मन्दिर पिहोवा, कुरुक्षेत्र, श्री शंकराचार्य जी मन्दिर, श्रीनगर, श्री क्षीरभवानी मन्दिर, श्रीनगर, श्री शारिकाजी मन्दिर, श्रीनगर, शिवजी मन्दिर गुलमर्ग, श्रीनगर, श्री कात्यायनी मन्दिर, कुलगाँव है। देश में लोप हो रही संस्कृत भाषा को बचाने के लिए और कर्मकाण्ड में निपुण विद्वान तैयार करने के लिए धर्मार्थ ट्रस्ट जम्मू, वीरपुर, देहली, हरिद्वार, वाराणसी में कर्मकाण्ड श्रेणियाँ चला रहा है। योग्य छात्र-छात्राओं को विशेष छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की जाती हैं।

धर्मार्थ ट्रस्ट जम्मू, वाराणसी, क्षीरभवानी, श्रीनगर, रामनगर, भद्रवाहु, वनिहाल, रामवन, सरथल, किश्तवाड़ में यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए धर्मशालाओं को चला रहा है।

धर्मार्थ ट्रस्ट, अभावग्रस्त निर्धन विधवाओं को सिलाई मशीनें और हरिजनों को यथाशक्ति अनुदान देता है।

धर्मार्थ ट्रस्ट जम्मू में गेस्ट हाउस पुरानी मंडी और अमरेश्वर मंदिर में कुछ परोपकारी संस्थाओं के सहयोग से जनता को निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करता है।

राज्य के विभिन्न भागों में प्रतीक यह ट्रस्ट योग शिविरों की भी व्यवस्था करता है तथा हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में धर्ममार्ग त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करता है।

* * *



डॉ. कमल किशोर मिश्र

उच्चतर शोध

- एम.ए., एम.फिल., पी–एच.डी., दिल्ली विश्वविद्यालय
- पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केंन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय।
- रिसर्च एसोसिएट, तदुपरांत रिसर्च साइंटिस्ट, श्रीरणवीर संस्कृत शोध संस्थान, जम्मू।
- सहायक प्रोफ़ेसर (अवकाश)
  संस्कृत विभाग, कलकता विश्वविद्यालय कोलकाता, पश्चिम बंगाल
- Oriental Epigraphy, Manuscriptology & Art; ICSSR Fellow & Jawaharlal Nehru Scholar, Teen Murti, Delhi

शोध वृत्ति

- नेहरू स्कॉलरशिंप, जवाहरलाल नेहरू स्मारक निधि, तीन मूर्ति, नई दिल्ली
- जूनियर रिसर्च फेलौशिप, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली।
- पोस्ट डॉक्टरल फेलौशिप, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।

प्रकाशित पुस्तकें

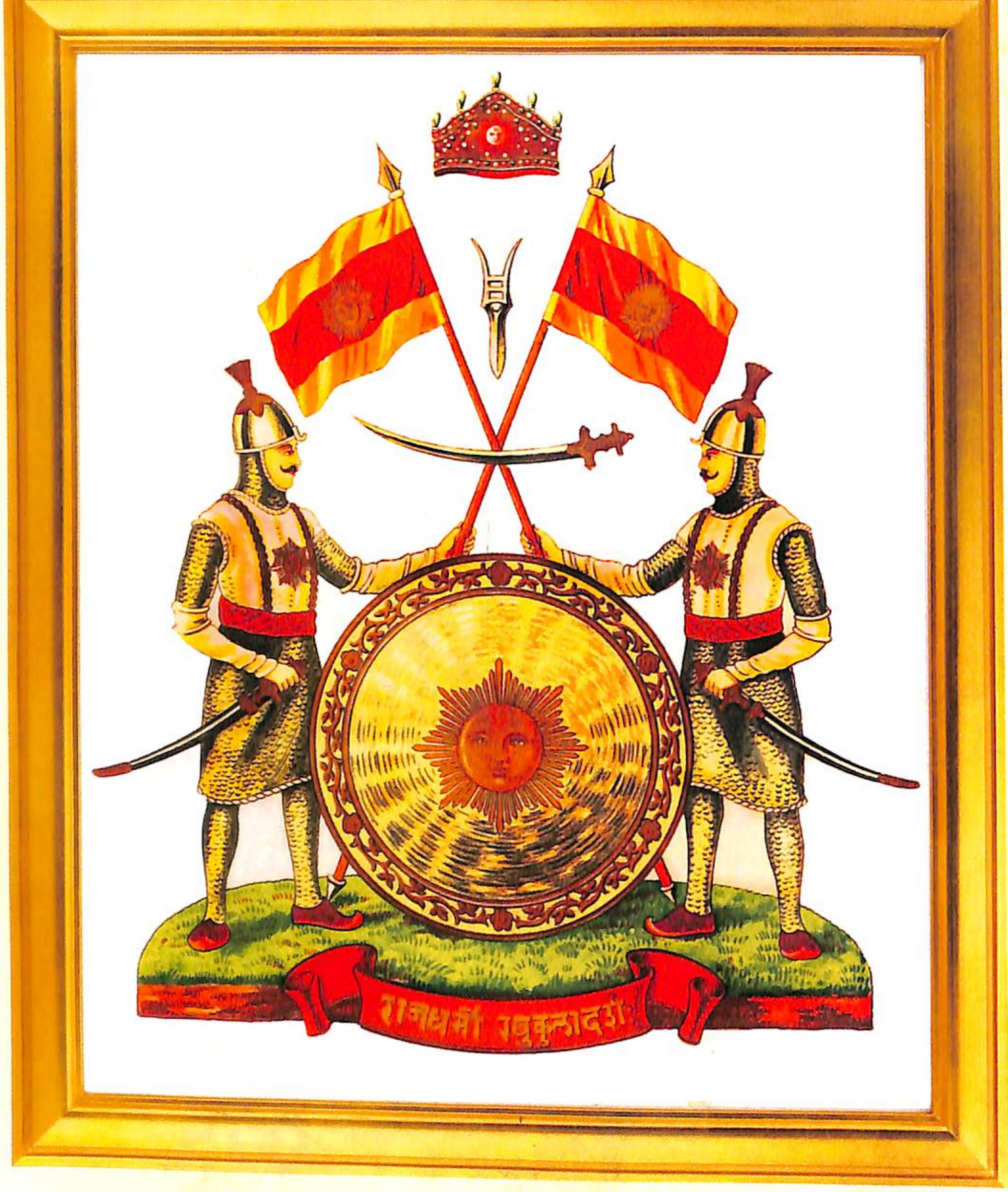
- प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था, 2004, (द्वि.सं. 2006) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
- Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts, Vol : IV, (with Sr. Dhaniram Shastri) Sri Randir Sanskrit Research Institute, Jammu, J&K.
- Kathak : The World of Shovana Narayan
- क्रांतिजा : इंदिरा गाँधी, लेखिका : उमा वासुदेव, हिन्दी अनुवाद, (सह–अनुवादक आनन्द पाठक),
- नटराज : ब्रह्माण्ड का दिव्य नर्तन
- महाभारत में आत्म विमर्श
- Traditional Indian Economy: A study Based on Sanskrit Epigraphs, translation by Shovana Narayan
- Random Plurals: Word, meaning & Perspevtive, Ed. (with Dr. Ratanmuthu Sugathan, ICHR)
- Database of Sanskrit Bengoli Manuscripts at Shreekhanda, West Bengal, (With Dr. Sayed Tanveer Nasreen, University of Burdwan)

VOLUME IN PRESS
VOLUME (EDITED) RELATED TO ORIENTAL SERIES OF OLD SANSKRIT MANUSCRIPTS with Dr. Syed Tanveer Nasreen, University of Burdwan

Dattakchandrika, Shri Bhashaparashari, Pakpradeep, Pushti Prakash, Vaidyamritam, Nadigyanam, Kalagyanam, Vedicsara, Kumartantram by Ravana, Panchabhutvadarth, Samudrikhastharekha

वर्तमान मे,

निदेशक,
भारतीय संस्कृतिक केन्द्र,
भारतीय उच्चायोग, सुवा,
रिपब्लिक ऑफ फीजी आईलेण्डस



SHUBHI PUBLICATIONS
240, City Centre, M.G. Road,
Gurgaon-122 002. (Haryana) India.
E-mail: shubipublications@yahoo.co.in
Visit us at: www.shubhiindia.com

Price: Rs.1475/-
ISBN-10: 818290210X
ISBN-13: 9788182902107
9 788182 902107